The Eternal Law

vs.

The Parliamentary Law

जैन सिद्धान्त के आधार पर

आज के युग की समस्याओं का हल

By

बालचंद मलैया

दिवाली १९७२ से लेकर ३१-८-७३ तक के संस्मरण

Published by :
Shri Digamber Jain
Sidhakshetra Drongiri Trust
P. O. Sendhpa,
District Chhaterpur, M. P.

First Edition : 1973
Price : Rs. 5.00

Printed by
Babulal Jain Phagull,
Mahavir Press
Bhelupur, Varanasi-1

Dedicated to

MAHATMA GANDHI

The believer in,

The Eternal Law

Preface

The Eternal law vs. The Parliamentary Law.

The law on the basis of which truthful facts, which would culminate into all happiness and peace to a living being, could not be established, is no law; it is a farce to dodge people to put them into acts of passions and luxuries, which have culminated into miseries, from which man today is ailing all over, and against which all remedies so far invented by man, have failed to turn those miseries and restlessnesses into happiness and peace, which have flown away to mars and would never come back again under present circumstances, so far as the parliamentary-mints are continuing to coin passion-laws.

Know thee this truth, leave enactments of passion-laws, leave thy passions and indulgence into luxuries fructifying there from, destroy the means of luxuries, if thee is desirous of happiness and peace; otherwise thy acts and actions in passion-laws would bring thee hell of miseries and restlessnesses at the fag-end of thy life.

Believe in this eternal truth, act in this, if happiness and peace is the goal of thy life.

Tilivillage–Saugor
17–6–73

प्रस्तावना

जैन-शासन और उसमें आत्मा का परिणमन

ज्ञान देने लेने की वस्तु नहीं है। आत्मा का गुण ज्ञान है जो कि दर्शनरूप समस्त संसार को देखता जानता है, किन्तु संसारी आत्मा सदैव-काल राग, द्वेष, मोहभावों में परिणमन करता है, जिस कारण पुद्गल द्रव्य के सूक्ष्म परमाणु, स्वयं आत्म प्रदेशों में प्रवेशकर, अपने ही स्निग्ध रूक्ष गुणों से स्कंधरूप बनते रहते हैं जिसे कार्मण शरीर कहते हैं और, जिसके आठ भेद हैं; जिन्हें घातिया कर्म—ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय तथा अंतराय कर्म व अघातिया कर्म—वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कहते हैं। ये चार घातिया कर्म आत्मा के शुद्ध दर्शन ज्ञान गुण को आच्छादित कर देते हैं और ऐसा संसारी आत्मा राग, द्वेष, मोह, रूप अज्ञानभाव में सदैव परिणमन करता रहता है। आत्मा का इस प्रकार परिणमन होने से वे चार घातिया कर्म अपने फलरूप चार अघातिया कर्म उपजाते हैं और इन्हीं के फलरूप संसारी आत्मा चार गतियों में भ्रमण करता, छह कायों में शरीर धारण कर, उपजता विनशता रहता है और जन्म जरा व मृत्यु के दुःख सदैवकाल भोगता रहता है। यह क्रिया सदैव जारी रहती है और इसे जीव की क्रम-बद्ध पर्याय कहते हैं।

आत्मा का शुद्ध दर्शन ज्ञान में आचरण, उसका सत्याचरण है, जिसे धर्म कहते हैं और आत्मा का राग, द्वेष, मोह रूप अज्ञान में आचरण, उसका असत्याचरण है। सत्याचरण से आत्मा सदैव सुखी होता है और असत्याचरण से आत्मा सदैव दुःखी होता है।

सत्य-आचरण में कभी कोई विवाद अथवा समस्याएँ खड़ी नहीं होती और आत्मा के असत्याचरण में विवाद एवं समस्याएँ सदैव खड़ी होती रहती हैं और वे आत्मा के असत्याचरण की तीव्रता में सदैव बढ़ती ही जाती हैं। आज जगत् में मनुष्य जाति में असत्याचरण का भीषण प्रकोप है, जिस कारण से वह मनुष्य जाति भीषणता से विवाद समस्याओं में उलझती जाती है। असत्याचरण भी बढ़ता जाता है और उसी प्रकार मनुष्य जाति का विवाद समस्याओं में उलझना भी बढ़ता ही जाता है। ज्ञान एवं सत्य को न जान मनुष्य जाति का लक्ष्य सत्याचरण की ओर कहीं भी नहीं है।

तिलीग्राम—सागर
२१–६–७३

विषयक्रम

जीव द्रव्य चैतन्य गुण रूप है अथवा अन्य गुण भी है?

मनुष्य के चित्त का दिवालियापन जितना आज देखा व जाना जाता है, उतना आज से पूर्व कभी नहीं हुआ।

वह सुख और शान्ति को चाहता तो है, किन्तु आज चित्त के पतन के कारण, उसके सभी उपाय दुःखों एवं अशांति को बढ़ाते ही जाते हैं।

पृथिवीतल पर दुःख एवं अशांति, हर वर्ग में भीषणता से बढ़ती दृष्टिगोचर है। सुख शांति को ढूँढ़ता मनुष्य हर स्थान पर पाया, देखा जाता है, किन्तु जब उसकी अचेतना हटे तभी सुख शान्ति वह पाए, सो अचेतना तो उसकी निरंतर बढ़ती ही जाती है।

चेतनता का मार्ग तो वह पकड़ता ही नहीं, सुख और शान्ति प्राप्त फिर वह कैसे करे?

हे मानव, आज जो तू प्रमादभाव से उत्तेजित हो, जीवन पर्यन्त, हिंसात्मक लड़ाइयाँ लड़ता ही जाता है सो इन हिंसात्मक लड़ाइयों का अंत तो जीवन पर्यंत कर नहीं पाता और जीवन का अंत हो जाता है।

इस प्रकार तू दुःख और अशांति को बढ़ाता, जीवन का अंत इनमें डूबकर कर देता है और प्रमाद भाव को बढ़ाने वाली जीवन की पूर्ण शिक्षा, अविद्या अथवा कुविद्या को ज्ञान की प्राप्ति की दिशा कहता है।

ज्ञान की प्राप्ति की दिशा को पाने पर तू चिरकाल सुख एवं शान्ति पाएगा, उसे ढूँढ, वह तो उत्तेजनाओं को हनन करने वाली, अप्रमत्त दशा है, सो प्रमाद भाव का हनन कर।

पर द्रव्य में परिणमन में तूने प्रमाद भाव ग्रहण किया है, पर द्रव्य में राग, द्वेष, मोह भाव रूप परिणमन को त्यागने पर, स्वद्रव्य में परिणमन से तू सदैव सुख शान्ति तू भोगेगा।

राग-द्वेष भावों के हनन बिना, सुख और शान्ति—हे मानव, तू असभव जान "………जो ज्ञानी भी 'पर द्रव्य मेरा है' ऐसा जानता हुआ, पर द्रव्य को निज रूप करता है, वह निःसन्देह मिथ्यादृष्टि होता है। इसलिए तत्त्वज्ञ 'पर द्रव्य मेरा नहीं है'—यह जानकर (लोक का और श्रमण का) पर द्रव्य में कर्तृत्व के व्यवसाय को जानते हुए, यह जानते हैं, कि यह व्यवसाय सम्यग्दर्शन से रहित पुरुषों का है।"

तिलीग्राम–सागर
३-११-७२

दिवाली-विचार

स्वयं कुमार्ग पर चलने वाला पुरुष, क्या अन्य को मार्ग बता उस मार्ग पर उसे आश्वस्तकर चलाने की क्षमता रख सकता है ?

कदापि नहीं।

भारत देश के विकारी नायको ! अन्य देशवासियों के विकारी कुमार्ग को स्वयं धारण कर, पथ भ्रष्ट हो क्या देशवासियों को, तुम लोग मार्ग पर चलाने की क्षमता रखते हो ? अथवा उन्हें पथ भ्रष्ट कर, देश में अशांति बढ़ाने में कारण बन चुके हो ?

असत्य को सत्य बता क्या उसी को ग्रहण करवाने में कटिबद्ध हो, अथवा नहीं ?

विचारो। क्या यह तुम्हारी अचेतनता का परिणमन नहीं है ?

तिलीग्राम सागर
८-११-७२

आत्मा में विचारों का परिणमन

शुद्ध विचार ही दृढ़ और मजबूत विचार होते हैं, क्योंकि वे पूर्ण होते हैं।

अशुद्ध विचार दृढ़ता रहित कमजोर विचार होते हैं, क्योंकि वे अपूर्ण होते हैं।

शुद्ध विचारों के आधार पर क्रिया सदैव, पूर्णतः सफल क्रिया होती है, तथापि सुखदायक होती है।

अशुद्ध विचारों के आधार पर क्रिया अपूर्ण होती है, ऐसी अपूर्ण क्रिया सफलता प्राप्त नहीं करती, तथापि दुःखदायक होती है।

सम्यग्दृष्टि के विचार शुद्ध होते हैं, मिथ्यादृष्टि के विचार त्रिकाल शुद्ध नहीं हैं, वे सदैव अशुद्ध होते हैं।

आज भारत देश के शासक के विचार अशुद्ध हैं, वे निरंतर अशुद्धता को बढ़ाते हुए ही क्रियाशील है, अतएव देश में दुःख एवं अशांति बढ़े तो क्या अचरज है ?

तिलीग्राम-सागर
२९-११-७२

Blood Sucking Wars

When lawlessness in a country boils over the pot, it blames another country; begins not only to blame that another country, but also, when that blame boils over the pot, it attacks its victim country, with all the ferocity at its command.

The attacked country was already boiling over with lawlessnesses in all spheres of its life, had bred hatred amongst the administrator and the administered, nay amongst a Brahmin & a Brahmin, a Bania and a Bania, to say a few only; and such this country was already blaming the attacker and was pointing its guns against the attacker country.

Guns have no knowledge, and the knowledge of the two countries was already acting in lawlessnesses, and they make the guns, suck the blood of human lives.

Know—the lawlessnesses, remove them, and act in lawfulness only; and thou shalt stop creating hatred amongst man and man, thy guns, howsoever ferocious, they would not act without thy lawless madnesses to use them; howsoever, ferociously acting, other peoples may by; they will not be attracted to wage blood sucking wars against thee; their weapons have no ears or eyes to act against thee.

It is thus a self proved fact, the lawlessnesses in

thy action are responsible for all the ills, from which thee is ailing and creating thy own miseries.

The belief that thy arbitrarinesses are lawfullnesses and thee is correctly and truthfully acting, is wrong, it is untruth.

Know thee, the truth. Differentiate between truth and untruth, put thy belief in truth alone and act in it alone. This would enable thee to act lawfully, and would bring thee happiness and peace; thy continuously so acting would bring thee everlasting happiness and peace.

हे मानव, तू असत्य को सत्य जानता हुआ, उसी में आचरण को प्राप्त है, तू सत्य को जान, तभी सत्य और असत्य का भेद जान पाएगा; और तभी तेरा आचरण सत्य में हो, तू सुख-शांति पाएगा।

तू अपने असत्य के आचरण से ही दुःखी है, यही तेरा शत्रु है; फिर इस आचरण को क्यों नहीं त्यागता ?

"जीवों के जो बंध होता है, वह वस्तु से नहीं होता, उसमें अध्यवसानभाव से ही होता है।" जैन-सिद्धान्त।

तिलीग्राम-सागर
२६-११-७२

सुख किसे कहते हैं ?

"अपने आपसे ही उत्पन्न, संपूर्ण सब पदार्थों में फैला हुआ, निर्मल और अवग्रह ईहा आदि से रहित, ऐसा ज्ञान निश्चय सुख है-इस प्रकार सर्वज्ञ ने कहा है।"

दुःख किसे कहते हैं।

"जो पाँच इंद्रियों से प्राप्त हुआ सुख है, सो ऐसे सुख की तरह दुःख रूप ही है; क्योंकि जो सुख पराधीन है, क्षुधा-तृषा आदि बाधायुक्त है, असाता के उदय से विनाश होने वाला है, कर्म बंध का कारण है; क्योंकि जहाँ इंद्रिय सुख होता है वहाँ अवश्य रागादिक दोषों की सेना होती है—उसी के अनुसार कर्म धूलि लगती है— और वह सुख—विषय अर्थात् चंचलपने मे हानि वृद्धि रूप है।"

ज्ञान चेतना अतीन्द्रिय सुख है।
कर्म चेतना सांसारिक सुख दुःख हैं।

"स्वपर का भेद लिए हुए जीवादिक पदार्थों को भेद सहित तदाकार जानना, वह ज्ञान भाव है अर्थात् आत्मा का ज्ञान भाव रूप परिणमना उसे ज्ञान चेतना कहते हैं; और आत्मा ने अपने कर्त्तव्य से समय-समय में जो भाव किए हैं, वह भावरूप कर्म है वह शुभादिक के भेद से अनेक प्रकार है, उसी को कर्म चेतना कहते हैं, और सुख रूप अथवा दुःख रूप—उस कर्म का फल है—ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

सुख व दुःख का भेद
केवलज्ञान अनाकुल सुख है व
अज्ञान ही दुःख है।

"जो केवल ऐसा नाम वाला ज्ञान है वह अनाकुल सुख है, और वही सुख सबके जानने रूप परिणाम है, उस केवलज्ञान के आकुलभाव नहीं कहा है, क्योंकि ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्म नाश को प्राप्त हुए हैं।

पदार्थों के पार को प्राप्त हुआ केवलज्ञान है तथा लोक और अलोक में फैला हुआ केवलदर्शन है। जब सब दुःखदायक अज्ञान नाश हुआ, तो फिर सुख का देने वाला ज्ञान है, वह प्राप्त हुआ ही।"

तिलीग्राम-सागर
७-१२-७२

आज संसार में जितनी भी विचारधाराएँ क्रियाशील हैं, उन सभी में विषय-कषायों के तुष्टीकरण की विचारधारा प्रमुख एवं सुख शांति की प्राप्ति की विचारधारा की मान्यता को प्राप्त है, किन्तु यथार्थता इससे विपरीत होने से, सुख शांति अतिदूर भागती जाती है; इस विचार-धारा को जैन सिद्धान्त अज्ञानता की विचारधारा कहता है।

मात्र ज्ञान की विचार धारा यथार्थ, परमहितु एवं सुख शांति की विचारधारा है—ऐसा जैन सिद्धान्त कहता है।

अतएव कषाय रहित भावों में आत्मा के परिणमन से जीव सुख शांति का भोक्ता है, अन्यथा नहीं।

आज के जगत् का मनुष्य न तो अत्याचार को जानता है और न ही अत्याचारी को, वह तो मात्र प्रतिकारी भावनाओं से ओत-प्रोत है, जिनके कारण लड़ाइयों को तत्पर हो, लड़ाइयाँ लड़ता ही जाता है; अन्य कुछ जानता ही नहीं।

फलतः जहाँ देखो वहाँ, अत्याचार बढ़ते ही जाते हैं, वे आगे कभी घटेंगे यह दृष्टिगोचर नहीं।

क्या यही सुख शांति का मार्ग है? यह तो मात्र दुःख अशांति का मार्ग है, अन्य कुछ नहीं।

हे मानव, इस विपरीत दृष्टिकोण को त्याग तू तत्त्वों एवं तथ्यों को तो जानता ही नहीं, इनको जान, उन में श्रद्धा को प्राप्त हो, तभी तेरा आचरण अविपरीतता को प्राप्त होगा।

तिलीग्राम–सागर
१८–१२–७२

जीव दो प्रकार के होते हैं

१. योगी

२. अयोगी

संसारी जीव के योग होता है व सिद्ध अयोगी होते हैं। योगी जीवों के गुणस्थान होते हैं। अयोगी जीव गुणस्थानों से मुक्त होते हैं।

गुणस्थान अचेतन हैं, यह अचेतनता प्रथम गुणस्थान में तीव्रतम होती है और गुणस्थान के उठने पर कम होती जाती है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव, जीव द्रव्य के चेतना गुण और अचेतना का भेद जानने लगता है और अविरत सम्यग्दृष्टि नाम पाता है।

चेतनता एवं अचेतनता का भेद जानने पर ही, जीव चेतनता में श्रद्धा को प्राप्त होता है और तदुपरांत वह अचेतनता को नाश करने का मार्ग धारण करता है।

अचेतनता का पूर्ण नाश बारहवें गुणस्थान में हो जाता है, और ऐसा जीव मात्र चेतनता में परिणमन करने लगता है और तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवलज्ञानी तीर्थंकर बनता है।

आयु कर्म का नाश होने पर ऐसा जीव, अयोगी सिद्ध अवस्था को प्राप्त होता है।

आगम में किस जीव के कौन कौन से गुणस्थान होते हैं, यह वर्णन "योग मार्गणा" द्वारा निरूपित है।

९३ वें सूत्र में मनुष्य स्त्रियों को संयत बताना आगम के विरुद्ध है, क्योंकि संसारी जीव जब तक संसार भ्रमण करता है तब तक उसकी दो अवस्थायें होती हैं १. पर्याप्त, २. अपर्याप्त। इन दोनों अवस्थाओं में किस जीव के कौन कौन गुणस्थान हो सकता है, यह पूर्णतः योग मार्गणा में निरूपित है।

बाद की मार्गणाएं योग मार्गणा के अंतर्गत ही निरूपित है, इस मार्गणा के विरुद्ध नहीं जा सकती हैं।

समयसार ग्रंथ में व्यवहारनय गुणस्थानवर्ती जीवों की चर्चा करता है, ऐसे जीवों को उसने अजीवता अथवा अचेतनता सहित कहा है।

निश्चय नय से उसने जीव को गुणस्थान रहित-सिद्ध जीव, जीवाजीवाधिकार में सिद्ध किया है।

तिलीग्राम-सागर
२१-१२-७२

स्वसमय और परसमय

पुद्गल कर्म—ज्ञानावरणादिक के प्रदेशों में स्थित, संसारी जीव सदैव रहता है अतः उसे परसमय कहते हैं।

जो सिद्ध जीव हैं वे ज्ञानावरणादिक आठ पुद्गल कर्मों का नाश करने से मात्र दर्शन ज्ञान चारित्र में स्थित होते हैं, तथापि वे स्वसमय कहे जाते हैं।

"हे भव्य, जो जीव दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित हो रहा है, उसे निश्चय से स्वसमय जानो और जो जीव पुद्गल कर्म के प्रदेशों में स्थित है उसे परसमय जानो"।

तिलोग्राम–सागर
२४–१२–७२

Today's News

All employers are in a state of chaos today in the country, where all employees are anarchous, bent upon returning no value, the values for the labour put in by them are rocketing, they are appeased by the lawlessnesses of the Government, and the lawlessnesses in the appeased employees are beating records every day, these lawlessnesses have no boundaries; these are the circumstances under which the country is boiling for happiness, prosperity and peace. Can you search out peace, prosperity and happiness from amongst these chaotic, anarchous and lawless acts and actions rampant in the country, throughout and all over ? No.

आज सर्वत्र मूर्खता का आचरण देखा-पाया जाता है। मूर्ख सदैव असत्यता का आचरण करता है और जो ज्ञानी पुरुष हैं, वे सदैव सत्य में ही आचरण करते हैं। ज्ञानी की प्रवृत्ति कभी असत्यता के आचरण में नहीं जाती। सोई अंग्रेजी भाषा के शब्द आज के जगत की अज्ञानता ही सिद्ध करते हैं, अन्य कुछ भी नहीं।

"अज्ञानी, अज्ञानभाव से पर द्रव्य को अपने रूप करता है और ज्ञानी पर द्रव्य को अपने रूप नहीं करता।"

तिलोग्राम-सागर
६-१-७३

Ye-fellow Beings.

All your achievements in wars and their weapons are your pure madnesses, madnesses of the magnitude, never seen ever before.

All your acts and actions in your these madnesses, have taken you farther and farther from the goal of your life—THE HAPPINESS AND PEACE OF MIND—and unhappiness and unrest pervades the mind of each man; go to any corner of this world, you will find nothing else.

This madness is untruth, know the truth, the true knowledge, thy acts and actions in truth, the true knowledge would no more require wars or war weapons; thy acts and actions in truth would knock happiness and peace at thy doors, it would provide thee with perfect sound body, thy speech would emit nectar and thee will rule the universe—ALL WOULD BE AT THY FEET—and there would be ever-lasting happiness which would be without a touch of misery. Once madnesses are thrown away, you will be on the path of happiness but not otherwise.

Look, see, behold, perceive and examine, this aspect of thought and come to the true conception of truth—the eternal law of God, the ever-happy soul.

By waging wars, you will never be happy—by waging wars you are throwing out happiness out of the Universe.

Price increases, scarcities of essential goods, scarcity of the many many needs you are experiencing today, are nothing but the culminations of your madnesses sitting in sky rockets.

Tilivillage–Saugor
21–1–73

"जो पुरुष आत्मा को अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य (तथा उपलक्षण से नियत और संयुक्त) देखता है, वह सर्व जिनशासन को देखता है—जो जिनशासन बाह्य द्रव्यश्रुत तथा आभ्यंतर ज्ञानरूप भावश्रुत वाला है।"

समयसार—१५

The Empire of Jain-Sindhant

Jain-Sindhant Empire is spread over the whole Universe, which is ruled by true laws enacted by true knowledge of Jain-Sindhant, which has been tanslated into figures of Prakrit literature by Acharya Kund-Kund, who laid them on paper and proved the eternal truth of Jain-Sindhant, 2000 years back and which proved the eternal truth of eternal facts which were already depicted in Prakrit literature, by Acharya Pushpadantt and Bhutbali, some six hundred years earlier, and which eternal facts and figures describe all living-beings, in all ages with the degree of true knowledge possessed by each, and the ways to find out the degree of true knowledge on which depends the happiness and peace of mind, speech and body which depend on the degree of purity of true knowledge, each soul may possess.

Acquisition of money is irrelevent and redundant for the attainment of true happiness which depend merely on the purity of knowledge, a soul may possess.

Tilivillage–Saugor
21–1–1973

Acts and Actions under Passions

Fire invokes fire, it makes it more violent. Goondaism invokes Goondaism, it adds to goondaisms.

Goondaisms in the country have culminated from Goonda laws and Goonda administration of those laws, which have made goondaisms more violent in the country. The arbitrary laws which have demolished age-old customs and cultures of the country, in order to appease the so-called madnesses of the educated class of peoples in the administration or outside, madnesses of luxuries. AND blind arbitrary administration of those laws, has turned the ignorant masses into beasts and animals, pulled by the so-called educated only as they like, in order to appese their passions and luxuries.

This is the BHARAT of today, in the eye of this critic.

Tilivillage–Saugor
24–1–73

Do not turn BHARAT into the fool of America, or the devil of Russia, they are all Ravans and Kaurwas.

See that you are killing Rams and Pandwas and giving birth to Ravans and Kaurwas, who edified images examplifying appeasements of luxuries, which were highest in Moghals, who, too, had themselves ruled from Delhis and Agras. The same fate dooms in more violent forms now.

Tilivillage–Saugor
24–1–73

Passion Laws

Enactments and actions of Central as well as State Governments of the Country are day-light dacoities, performed under laws, enacted by their Parliaments, and which laws are embodiments of lawlessnesses, emerging from the rocket-way changing lawless-thoughts of the members of those Parliaments; thoughts changing from minute to minute in search of new ways to increase those dacoities (performed merely to intoxicate the luxuries of the numberlessly growing administrators) which are being made against all classes of citizens, and the poor masses of the country mainly—dacoities performed merely to intoxicate and send the administrator into the luxuries of unfathomable depth of the Pacific; and these dacoit administrators are growing numberlessly in the country.

Would those attacked by the above words, nullify the words, which are based on eternal lawfulnesses, unshakeable by the jungles of Parliamentary laws ?

The enactments of Parliaments in the country today have been instrumental in showering luxuries in all corners of the country and the Country today, is the SLAVE of luxuries which slave character is culminating into unrest and unpeacefulnesses all over the country.

Look, see, behold, conceive, perceive, consider and examine this conception of thought.

Tilivillage–Saugor
25–1–73

A fool, his foolishness, his acts and actions under foolishness, and its effects.

If a fool acts foolishly, why should other suffer the foolishness of that fool ?

All arbitrary actions are foolish acts of a fool and the citizen is made to suffer for the foolish arbitrary actions of the administrators all over the country. How can there be peace and tranquillity in the country and happiness to the citizen under these circumstances ?

Is not the citizen under dead comma, under the limitless lawlessnesses of the rulers who knows only to appease their passions and luxuries at the cost of the poor citizen, now at the dead comma, watching the end only ?

Tilivillage-Saugor
26-1-73

The truth vs. the Untruth

Know thee thy ails, thee is suffering from.
Know thee thy problems, thee has to tackle.
Know thee thy pains, that have baffled thee.
Know thee thy diseases, which have marred thy life

Could thee know them during the short span of life, possessed by thee ?

Is the last period of thy life, happy and peaceful ?

or

Is it unhappy and unpeaceful, with Himalayas of worries and pains and restlessnesses ?

Thy birth and babyhood was pleasant and sweet, where have you thrown them, how did you lose them ?

Decidedly, you never possessed the knowledge, the true knowledge, knowledge to maintain them, you had possessed untrue, unreal knowledge which prevailed and was instrumental in thy acts and actions, fructifying into thy ails, problems, pains, diseases, unhappinesses and unpeacefulnesses, all of which were fruits of thy acts and actions in untrue knowledge during thy span of life which had to end in miseries and worries.

Ye-fellow-beings—know the true knowledge, the truth—acts and actions under its directions, would prevent thee from being thrown into any ails,

problems, pains, diseases, unhappinesses and miseries of any type whatsoever, thy acts and actions in true knowledge would distinguish, between truth and untruth, between good and bad, would stop thee from bad acts and actions, and would direct good acts and actions only; when thee would attain all moments of life happy and peaceful.

Tilivillage–Saugor
28–1–73

जैन दर्शन

जैन सिद्धान्त ने जीव कर्म व पुद्गल कर्म का भेद किया है और बताया है कि संसारी आत्मा, जीव कर्म का कर्त्ता एवं भोक्ता है; वह जीव कर्म अथवा भाव कर्मों का कर्त्ता और उन्हीं भाव कर्मों का भोक्ता है किन्तु पुद्गल कर्म का कर्त्ता पुद्गल ही है उसका कर्त्ता भोक्ता आत्मा त्रिकाल नहीं होता। एक द्रव्य की क्रिया दूसरे द्रव्य में नहीं होती। पुद्गल में ज्ञान न होने से पुद्गल सुख-दुःख का भोक्ता नहीं होता। केवल जीव द्रव्य में ज्ञान-अज्ञान होने से, संसारी जीव अज्ञानता में परिणमन करता हुआ संसारी सुखों एवं दुःखों का अपने अज्ञान भावों में परिणमन करने से भोक्ता है। यही अज्ञान भाव, उस जीव का उस अज्ञान भाव की प्रचुरता अथवा मंदता के अनुपात में संसारी दुःख अथवा सुख है। जब जीव ज्ञान भाव में परिणमन करने लगता है, तब संसारी सुख दुःख जो पराधीन होने से दोनों ही दुःख रूप हैं, का अभाव हो जाता है, यही परिणाम जीव का समता भाव का परिणाम है। समता भाव में परिणमन करते हुए जीव के उस निमित्त का नाश हो जाता है जिसके कारण पुद्गल कर्म वर्गणा पिंड आत्म प्रदेशों में प्रवेश कर ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों का पिंड अर्थात् कार्मण शरीर बनाते हैं। रागद्वेष भाव अचेतन भाव हैं यही अध्यवसान भाव हैं और इन्हीं का निमित्त पा, पुद्गल-परमाणुओं का स्कंध-कार्मण शरीर-आत्म प्रदेशों में बनता रहता है और जब राग द्वेष भावों में आत्मा का परिणमन रुक कर राग, द्वेष रहित समता भावों में परिणमन होने लगता है तब पुद्गल परमाणुओं का आत्म प्रदेशों में प्रवेश रुक जाता है। समता भावों में आत्मा का परिणमन होने के उपरान्त कार्मण शरीर के पुद्गल परमाणुओं का आत्म प्रदेशों से निकलना जारी हो जाता है और नया प्रवेश नहीं होता यह पुद्गल परमाणुओं का खिरना निर्जरा द्वारा जारी रहता हुआ जब वे पुद्गल परमाणु पूर्णतः खिर जाते हैं तो निमित्त के अभाव में उनका प्रवेश पुनः नहीं होता और जीव द्रव्य शुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है; जिसे सिद्ध अवस्था कहते हैं। संसारी सुख-दुःख तो भाव कर्म होते हैं,

सिद्ध जीव शुद्ध दर्शन ज्ञान गुण में परिणमन करता निराकुल शाश्वत् सुख का भोक्ता सदैव काल एक रूप हो जाता है।

यथा "सो यह आत्मा लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी है, उन असंख्यात प्रदेशों में पुद्गल कर्म वर्गणा पिंड मन वचन काय वर्गणाओं की सहायता से जो आत्मा के प्रदेशों का कंपरूप योग का परिणाम है, उसी के अनुसार जीव के प्रदेशों में प्रवेश करते हैं, और परस्पर में एक क्षेत्रावगाह कर बंधते हैं, तथा वे कर्म वर्गणा पिंड राग, द्वेष मोह भाव के अनुसार अपनी स्थिति लेकर ठहरते हैं, उसके बाद अपना फल देकर क्षय हो जाते हैं।"

"जो जीव पर द्रव्य में रागी है, वही ज्ञानावरणादिक कर्मों को बांधता है, और जो राग भाव कर रहित है, वह सब कर्मकलंकों से मुक्त होता है निश्चय कर संसारी आत्माओं के यह रागादि विभाव रूप अशुद्धोपयोग ही भाव बंध है, ऐसा बंध का संक्षेप कथन हे शिष्य; तू समझ।"

तिलीग्राम–सागर
२–२–७३

शुद्ध आत्मा (परिभाषा)

"जो शुद्ध दर्शन-ज्ञानमय आत्मा है सो ही मैं हूं अन्य जो भाव हैं, वे पर भाव हैं, मुझसे भिन्न हैं, मैं उन पर भावों वाला नहीं हूं; वे सब जड़-अचेतन भाव हैं, ऐसा जो स्वपर विवेकी मैं हूं, वही मैं हूं, मैं अन्य नहीं हूं।"

"दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप परिणत आत्मा यह जानता है कि निश्चय से मैं एक हूं शुद्ध हूं दर्शन ज्ञान मय हूं; सदा अरूपी हूं किंचित् मात्र भी अन्य पर द्रव्य परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है, यह निश्चय है।"

"ज्ञानी विचार करता है कि—निश्चय से मैं एक हूं, शुद्ध हूं, ममता रहित हूं, ज्ञान दर्शन से पूर्ण हूं, उस स्वभाव रहता हुआ (मैं) इन क्रोधादिक सर्व आस्रवों को क्षय को प्राप्त कराता हूं।"

"यह आस्रव जीव के साथ निबद्ध हैं, यह अध्रुव हैं अनित्य हैं, तथा अशरण हैं, और वे दुःख रूप हैं, दुःख ही जिनका फल है—ऐसे हैं, ऐसा जानकर ज्ञानी उनसे निवृत्त होता है।"

तिलोग्राम–सागर
१५–२–७३

जैन शासन व नागरिक

जैन शासन का साम्राज्य लोक प्रमाण है।
जैन शासन, जैन सिद्धान्तानुकूल शासित है।
जैन शासन का नागरिक—
मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व,
अज्ञान एवं ज्ञान,
सत्य एवं असत्य,

का भेद जानना है, और सम्यक्त्व को प्राप्त कर शुद्ध ज्ञान-दर्शन के सत्य आचरण से एक रूप सुखों का भोक्ता है। वह मिथ्यात्व के असत्य आचरण को सर्व दुःखों का कारण जान, उस आचरण का त्याग करता है।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों का त्रिकालवर्ती स्थान लोक है, इसके बाहिर केवल आकाश है।

हे भव्य पुरुष ! उपरोक्त तत्वों को जान उनमें श्रद्धा को प्राप्त हो, शुद्ध दर्शन-ज्ञान में ही आचरण कर।

राग, द्वेष, मोह भावों के निमित्त-विषय कषायों को त्याग।
जैन शासन ही शुद्ध शासन है।
जैन नागरिक ही शुद्ध नागरिक है।

जैन नागरिक ही मिथ्यात्व का नाश कर, सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, तथा विषय कषाय के त्याग से, सम्यक्त्व-संयम को धारण कर शाश्वत सुखों के भोगने का पात्र होता है। अन्य नहीं।

ऐसे जैन शासन का शासक
सर्वज्ञ-वीतराग-देव हैं।

ऐसे सर्वज्ञ-वीतराग-देव अंतिम तीर्थंकर भगवान्-महावीर को मेरा द्रव्य-भाव नमस्कार है।

तिलीग्राम–सागर
१९-२-७३

आज देश का नागरिक

जीवन का अंत तो हो गया किन्तु सरकारी दरवाजे पर नागरिक की पेशी का अंत नहीं हो पाया—सरकारी दृष्टि में उसके गुनाहों का अंत आज देश में नहीं।

सरकारी विभागों के इंसपेक्टर, नागरिक की पकड़जकड़ में बहुरूपेण बहुसंख्यकता से नागरिक के जीवनरूपी आकाश में क्या टिड्डीदल जैसे नहीं मड़रा रहे हैं? क्या नागरिक की कमाई की छीना-झपटी इन इंसपेक्टरों और उनके गुरुशासकों का भोजन नहीं है? क्या आज का नागरिक इन इंसपेक्टरों और शासकों की दया पर जीवन नहीं बिता रहा है?

क्या यही गांधीवादी सुख-शांति का नमूना है?

तिलीग्राम–सागर
२७-२-१९७३

Acts and Actions of Worldly Soul

The foolishness of the fool cannot be exchanged with the wisdom of the wise.

The foolishness of the fool. cannot be sold out in the market and wisdom of the wise, purchased in its place.

The wisdom of the wise cannot be loaned out either, to the fool who may act in the wisdom of the wise.

The wisdom of the wise always acts in the wise, whose actions are wise actions; and the foolishness of the fool alway acts in the fool whose actions are always foolish.

It is, therefore, proved—the FOOL himself must turn out the foolishness in himself in order to become wise, when his acts and actions would bocome wise and he would be happy.

It is thus evident, says JAIN-LAW, foolishness is misery and wisdom is happiness and if you are unhappy, that unhappiness is the fruit of your acts and actions in your own foolishness and in such circumstances, you must treat yourself as foolish only and not a wise man.

Apply these provisions of the JAIN-LAW, the eternal law, to the country of Bharat where it would be difficult to find happiness.

Tilivillage-Saugor
27-2-73

जैन सिद्धान्त में यह चर्चा इस प्रकार है—

"क्योंकि ज्ञानमय भाव में से ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है इसलिए ज्ञानियों के समस्त भाव वास्तव में ज्ञानमय ही होते हैं। और क्योंकि अज्ञानमय भाव में से अज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है, इसलिए अज्ञानियों के भाव अज्ञानमय ही होते हैं।"

"जैसे स्वर्णमय भाव में से स्वर्णमय कुंडल इत्यादि भाव होते हैं और लोहमय भाव में से लोहमय कड़ा होते हैं, उसी प्रकार अज्ञानियों के अनेक प्रकार के अज्ञानमय भाव होते हैं, और ज्ञानियों के सभी ज्ञानमय भाव होते हैं।"

तिलीग्राम–सागर
२८-२-१९७३

कर्त्ता और कर्म

बिना कारण के कार्य नहीं होता और जो कार्य अथवा क्रिया है वही कर्म है। और जो कारण है वह गुणस्थान है। जो गुणस्थान कर्त्ता बनता है, उसी गुणस्थान का सुखदुःख जीव भोगता है, अतः सिद्ध हुआ कि जीव के जो गुणस्थान हैं वे ही संसारी सुख-दुःख हैं।

संसारी जीव गुणस्थानवर्त्ती है और जीव का गुणस्थानों में परिणमन संसार है। संसारी जीव अपने गुणस्थानों के अनुरूप कार्मणशरीर के बनने में निमित्त बनता है और वह कार्मण शरीर पुद्गलपर्याय धारण करता एक पर्याय से दूसरी पर्याय में जा चारों गतियों में सदैव काल भ्रमण करता रहता है और संसारी पर्यायों के सुख-दुःख भोगता रहता है।

निश्चयनय-व्यवहारनय में उपरोक्त चर्चा :—

निश्चय का ऐसा मत है कि आत्मा अपने को ही करता है और फिर आत्मा अपने को ही भोगता है, ऐसा हे शिष्य तू जान।—स. ८३

व्यवहारनय का यह मत है कि आत्मा अनेक प्रकार के पुद्गलकर्म को करता है और उसी अनेक प्रकार के पुद्गलकर्म को भोगता है।—स. ८४

संसारी जीव दो प्रकार के हैं—शुद्ध और अशुद्ध। अशुद्ध जीव का परिणमन आकुलता सहित होता है वह परद्रव्य में सदैव सुखों को ढूँढता है और न पा दुःखी होता है।

शुद्ध जीव का परिणमन निराकुलता में होता है, वह स्वयं के दर्शन-ज्ञान गुण में सुख को ढूँढता पाता, सदैव सुखी होता है। पर की आकुलता का उसे, सुखों का कारण नहीं तथापि आकुलता का दुःख भी नहीं।

तिलोग्राम—सागर
९-३-७३

भेद विज्ञान

लड़कपन सरल होता है, बुढ़ापा कठिन होता है। बुढ़ापा आ जाता है किन्तु लड़कपन नहीं जाता और लड़कपन में ही तू काल का ग्रास बन जाता है।

बड़े-बड़े शिक्षालय बने परन्तु वे सभी लड़कपन हटाने में असफल ही नहीं हुए अपितु लड़कपन तीव्रता से बढ़ाने की शिक्षा दे, लड़कपन बढ़ाते ही जाते हैं।

लड़कपन का फल—शारीरिक एवं मानसिक व्याधियाँ—इनको हटाने बड़े-बड़े आविष्कार—अस्पताल-कचहरियाँ आईं परन्तु वे सब लड़कपन हटाने में असमर्थ हुए।

लड़कपन करने में व्यक्ति-व्यक्ति में, समाज-समाज में व देश-देश में होड़ लगी है, भीषणतम लड़ाइयाँ लड़कपन पाने की होड़ में हो रही हैं। और लड़कपन बढ़ता जाता है; मुँह भी भीषणता से लड़कपन की वाणी बक रहा है और इस होड़ को सिद्ध कर रहा है।

हे भव्य प्राणी ! तुझे लुभाने वाले इस लड़कपन को त्याग। बुढ़ापा कठिन होने पर भी, उसमें सफलता को प्राप्त हो, तभी तू सुखी बनेगा, अन्यथा नहीं।

मोहवश जागता हुआ भी तू सोता है। भगवान् की इस वाणी को सत्य जान, उसी में श्रद्धा को प्राप्त हो। मोह लड़कपन है—उसे त्याग और भगवान् की वाणी वीतराग भाव में, शुद्ध आत्म तत्त्व को जान, उसमें श्रद्धा को प्राप्त हो, उसी में आचरण कर, तभी तू शारीरिक, मौखिक एवं मानसिक सुख शान्ति को प्राप्त होगा। यथा :

"सर्व लोक में काम भोग सम्बन्धी बंध की कथा तो सुनने में आ गई है, परिचय में आ गई है और अनुभव में भी आ गई है, इसलिए सुलभ है, किन्तु भिन्न आत्मा का एकत्व होना कभी न तो सुना है, न परिचय में आया है और न अनुभव में आया है इसलिए एकमात्र वही सुलभ नहीं है।"

शुद्ध आत्मा का परिणमन-अथवा संयम, आचरण, चारित्र।

"पूर्वकृत जो अनेक प्रकार विस्तार वाला (ज्ञानावरणी आदि) शुभाशुभ कर्म है, उससे जो आत्मा अपने को दूर रखता है वह आत्मा प्रतिक्रमण करता है।

भविष्य काल को जो शुभ अशुभ कर्म जिस भाव से बांधता है उस भाव से जो आत्मा निवृत्त होता है, वह आत्मा प्रत्याख्यान है।

वर्तमान काल के उदयागत जो अनेक प्रकार के विस्तार वाला शुभ अशुभ कर्म है उस दोष को जो आत्मा चेतता है-अनुभव करता है-ज्ञाता भाव से जान लेता है। अर्थात् उसके स्वामित्व कर्तृत्व को छोड़ देता है वह आत्मा वास्तव में आलोचना है।

जो सदा प्रत्याख्यान करता है, सदा प्रतिक्रमण करता है और सदा आलोचना करता है, वह आत्मा वास्तव में चारित्र है।"

विषय कषाय में आत्मा का आचरण, लड़कपन है, यही मिथ्यात्व है अर्थात् मूर्खता का आचरण है इसी विषय कषाय में आत्मा के आचरण को मूर्खता का आचरण जान, श्रद्धा को प्राप्त हो, विषय-कषाय रहित आत्मा का आचरण होना मोई बुढ़ापा जान यही सम्यक्त्व है, सम्यक् चारित्र है। यही निश्चय मुख्य जान।

तिलोग्राम—सागर
१२-३-७३

संस्मरण

जैन सिद्धान्त के आधार पर आज के युग की समस्याओं का हल।

Unless you know the difference with unbroken confidence—between pure soul and impure worldly soul and remove the impurity pervading your soul, your soul will not be able to act with purity. You are today adding impurity to your soul and the impure soul which is a directing factor and instrumental in all your actions of mind, body and speech—there is degeneration of your body, mind and speech and all the inventions in hospitals and medicines and the highest of your courts have utterly failed in giving peace and happiness to your body, mind and speech with which all are found ailing throughout on the surface of the globe with boiling restlessness in the body, mind and speech.

Know thy the truth, make thy soul pure, then alone thou shall get directions of successful acts and actions of mind, body and speech fructifying into happiness and peace all over. Otherwise not.

Tilivillage–Saugor
13–3–73.

आज का युग

आज न्यायालयों के जो विवादों के निर्णय अंतिम हो, नागरिक को उन्हें मानने के लिए बाध्य किए जाते हैं, वे निर्णय भी महत्त्वहीन हो चुके हैं क्योंकि उन्हीं श्रेणी के अन्य विवादों को हल करने में वे असमर्थ हैं। नागरिक को न्यायालयों के निर्णयों के प्रति कोई श्रद्धा नहीं रही, तथापि विवाद और समस्याएँ भीषणता से बढ़, मनुष्य को जीवन पर्यंत जकड़ती ही जाती हैं। आज के मनुष्य समाज द्वारा स्थापित पार्लियामेन्टों में, न तो उन सिद्धान्तों के रचने की क्षमता ही है कि जिनके आधार पर, मनुष्य समाज के विवाद घटें और अगर न्यायालय उन सिद्धान्तों की अवहेलना कर, अपने स्वयं के कषायों से प्रेरित हो निर्णय दे, तो ऐसे निर्णय पार्लियामेन्ट द्वारा रचित सिद्धान्तों के विपरीत तो हैं हो, साथ ही साथ, नागरिक को उन कषायों का फल भोगने को बाध्य होना पड़ता है कि जिनके फलस्वरूप न्यायालय निर्णय देता है। ऐसी परिस्थिति में नागरिक विवादों एवं समस्याओं में उलझा रहे, उन्हें बढ़ाता ही जाए तो आश्चर्य ही क्या।

विषय-कषाय रहित मार्ग दर्शन देने वाला, न तो आज दृष्टिगोचर है, और न ही किसी का इसमें विश्वास है कि विषय-कषाय की न्यूनता में ही दीर्घकाल संसारी सुख है। अतः आज का युग—विषय-कषायों हेतु, झगड़ों का युग कहें—तो जरा भी अतिशयोक्ति नहीं।

तिलीग्राम-सागर
१७-३-७३

आज का पृथक्तावादिता का युग

जितनी भी भाषाएँ हैं उनमें जो शब्द भिन्न-भिन्न प्रकार के चिह्नों द्वारा अंकित होते हैं और उन शब्दों द्वारा जो भी वाक्य अथवा वाक्यांश रूप प्रकट हो अंकित किए जाते हैं, वे सभी शब्द, मनुष्य की विचार-धाराओं को अंकित करते हैं; और इन्हीं शब्दों द्वारा विचारधाराएँ, एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाई जाती हैं।

एतदर्थ जैसी-जैसी मनुष्य की विचारधाराएँ होती गईं, तद्रूप शब्दों का केवल निर्माण ही नहीं होता गया, तथापि उन्हीं शब्दों का उपयोग जो पूर्व में किसी विचारधारा हेतु अंकित हुआ था, अब इन्हीं शब्दों का उपयोग भिन्न ही विचारधारा अंकित करने हेतु होने लगा है।

आज का युग विषय-कषाय की तीव्रता से बढ़ते हुए आचरण का युग है और जितने भी शब्द भाषाओं की परिधि में अंकित हैं, वे सभी शब्द अपने पूर्व अर्थ को त्याग मात्र आज के विषय-कषाय के तुष्टीकरण हेतु विचारधाराओं को अंकित करने में सचेष्ट हैं, उन्हें अब पूर्व विचार-धाराओं को निर्देश करने का हक ही नहीं रहा। ऐसी परिस्थिति में आज मनुष्य, उन्हीं शब्दों द्वारा पूर्वांकित विचारधाराओं को जाने, यह असाध्य बन चुका है।

आज विषय-कषायों का पोषक साहित्य भी, अपनी चटक-मटक ले, इतनी भीषण मात्रा में मनुष्य समाज के सामने प्रस्तुत हो रहा है और यह साहित्य भी उसे इतनी तीव्रता से लुभा रहा है कि आज मनुष्य इसी साहित्य के गीत गा रहा है, उसी के द्वारा अंकित विषय-कषाय की विचारधारा को ग्रहण करता, उसी आचरण में डूबा हर ओर दृष्टिगोचर है, उसे विषय-कषाय से पराङ्मुख विचारधाराओं को जानने-देखने, व उनमें श्रद्धा को प्राप्त होने का जीवन पर्यंत अवसर ही नहीं। अस्तु।

तिलीग्राम–सागर
१७-३-७३

अनुशासन (Rule-administration)

अनुशासन शब्द का अर्थ श्रद्धा है सोई आज जगत् में विषय-कषाय का अनुशासन है। जितने भी सिद्धान्तों (laws) की आज जगत् में रचना होती है वे सभी सिद्धान्त इस तथ्य के आधार पर अंकित किए जाते हैं कि मात्र विषय-कषाय का आचरण ही संसार में सुखों का कारण है, अन्य कोई मार्ग सुखों का कारण ही नहीं है। आज जगत् में यह श्रद्धा तीव्रता को ही प्राप्त नहीं है, अपितु निरंतर दिन प्रतिदिन अपनी सीमाओं का उल्लंघन करती ही जाती है, भविष्य में भी ऐसा ही होता जायगा, इसमें कोई शंका दिखती ही नहीं।

विषय-कषाय रहित आत्मा का परिणमन भी हो सकता है और वही अनाकुल सुख है यह आज मनुष्य न तो जानता ही है और न ही इस प्रकार उसके जानने की चेष्टा ही है; और वह इस विचारधारा से दिन प्रतिदिन दूर ही होता जा रहा है। विषय-कषाय रहित आत्मा के आचरण में ही निराकुल सुख एवं शांति है और मनुष्य सुखी रह सकता है— ऐसा जब तक जानकर, मनुष्य इसी विचारधारा में श्रद्धा को प्राप्त न हो, तब तक विषय-कषाय रहित अपने आचरण को बनाए भी कैसे ?

जैन-शासन में श्रद्धा को प्राप्त श्रावक ही यह आचरण बना सकता है, सोई आज जैन-शासन का तो पूर्णतः अभाव है, फिर मनुष्य निराकुल सुख शांति कैसे प्राप्त करे ? जैन सिद्धान्त का ज्ञान, उसमें श्रद्धा को प्राप्त होने की ओर आज लक्ष्य ही नहीं। सम्यग्दर्शन क्या है, उसमें आचरण कैसे बने, इस ओर दृष्टि किसी की भी नहीं है।

तिलीग्राम–सागर
१८-३-७३

Anand Mishra

मिथ्यात्व व सम्यक्त्व (परिभाषाएँ)

तिर्यंच और मिथ्यादृष्टि इन दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है। आज की भाषा में इन शब्दों का अर्थ मूर्ख है किन्तु इस अर्थ मे भी यह जानना कि मिथ्या अथवा विपरीत बुद्धिवाले सभी जैन सिद्धान्त में मूर्ख कहे गए हैं और जैन सिद्धान्तानुकूल, विषय-कषाय में आचरण, जो कि रागद्वेष मोह भावों को आत्मा के भाव जानने के कारण होता है—ऐसे सभी आचरण-मिथ्यात्व अथवा मूर्खता हैं। ऐसे आचरण के हटे बिना, आत्मा का शुद्ध आचरण, जिसे सम्यक्त्व का आचरण कहते हैं, ऐसा आचरण नहीं बनता। सम्यक्त्व शब्द का अर्थ, आत्मा के शुद्ध दर्शन-ज्ञान गुण में श्रद्धास्पद होना है।

तिलीग्राम—सागर
१९-३-७३

अशुभोपयोग (पाप कुण्ड)

संसारी जीव के सामने दो कुण्ड हैं :—

पहला नरक कुण्ड, दूसरा स्वर्ग कुण्ड।

संसारी जीव पुरुष, आज प्रति देश में, दो भागों में विभाजित है। पहिला राजावर्ग दूसरा प्रजावर्ग। संसारी जीव-मनुष्य को सदैव प्यास लगती है। सो जो राजा वर्ग है, वह चरवाहा बन कर, प्रजावर्ग को पशुवत् हांककर नरक कुण्ड की ओर ले जाता है। जो राजा वर्ग है वह स्वयं नरक कुण्ड में जाकर अपनी प्यास बुझाने उसमें डूबा हुआ है और प्रजावर्ग को भी नरक कुंड में ले जाकर; उसकी प्यास बुझाने हेतु पटक रहा है।

नरक कुण्ड में प्यास तो बुझ जाती है परन्तु वह क्षणिक काल को ही बुझती है सो जो राजावर्ग है वह अपनी प्यास बुझाने नरककुण्ड में डूबा ही रहता है और जो प्रजा वर्ग है वह यद्वा तद्वा उसमें अपनी प्यास बुझाने में सदैव लगा रहता है।

नरक कुण्ड तो नरक कुण्ड ही है, सो प्यास बुझाते बुझाते, उस जीव पुरुष पर नरक कुण्ड के पानी का असर होने लगता है। राजावर्ग शिक्षित होता है और प्रजावर्ग अशिक्षित। सो प्रजावर्ग भीषण शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से लिप्त हो जाता है। राजावर्ग इन बीमारियों को भगाने हेतु अस्पताल व कचहरियां बना देता है और प्रजावर्ग अपनी शारीरिक एवं मानसिक व्याधियां हटाने हेतु, उनकी शरण में जाता है। यह क्रम रहट की घग्गिया समान जीवन पर्यंत चालू है किन्तु न तो नरक कुण्ड से प्यास ही बुझ पाती है और न ही वे अस्पताल एवं कचहरियां व्याधियों को दूर कर पाई हैं।

और जो राजा वर्ग है वह नरक कुंड को स्वर्ग कुण्ड कहता है, जानता है, मानता है और श्रद्धास्पद है सो नरक कुण्ड की रक्षा हेतु प्रजापर अत्यन्त निर्दयता से कर लगाता है और उन करों द्वारा बड़े-बड़े शिक्षालय स्थापित करता है और उनमें ऐसी शिक्षा देता है कि प्रजावर्ग यह जाने, माने और श्रद्धा को प्राप्त होवे कि नरक कुण्ड ही स्वर्ग कुण्ड है।

सो उन करों का कुछ भाग तो इस प्रकार खर्च कर देता है और उसका विशेष भाग स्वयं खर्च कर लेता है और एक और विशेष भाग आधुनिकतम युद्ध की सामग्रियों एवं फौजों पर खर्च करता है ताकि भीषणतम लड़ाइयाँ लड़ने योग्य वह बना रहे और उस नरक कुण्ड की वह रक्षा कर सके।

राजावर्ग और प्रजावर्ग, दोनों की प्यास निरंतर बढ़ती ही जाती है और नरक कुण्ड से उसकी तृप्ति नहीं होती, तदुत्पादित शारीरिक एवं मानसिक व्याधियाँ भी बढ़ती ही जाती हैं और अस्पताल, कचहरियाँ भी बढ़ती जा रही हैं किन्तु व्याधियाँ घटने की जगह बढ़ती ही जाती हैं, वे व्याधियों को दूर करने में असमर्थ हैं।

यही आज के जगत् का जीवन है, इसी नरक कुण्ड में प्यास बुझाते बुझाते मनुष्य के जीवन का अंत हो जाता है। स्वर्ग कुण्ड की चर्चा रामायण महाभारत में ही धरी रह जाती है।

इस चर्चा को जैन सिद्धान्त इस प्रकार कहता है, यथा :—

"जिस जीव का अशुद्ध चैतन्य विकार परिणाम, इन्द्रिय विषय तथा क्रोधादि कषाय इनमे अत्यन्त गाढ हो, मिथ्या शास्त्रों का सुनना, आर्त-रौद्र ध्यान अशुभ ध्यान रूपमन, परायी निंदा आदि चर्चा, इनमें उपयोग सहित हो, हिंसादि के आचरण करने में महा उद्यमी हो और वीतराग सर्वज्ञ कथित मार्ग मे उल्टा जो मिथ्या मार्ग, उसमें सावधान हो, वह परिणाम अशुभोपयोग है।

तिलीग्राम-सागर
२६-३-७३

Country ruled by jackal laws

Today the country is governed by jackal administration which is directed by jackal laws, both in lion's garb.

AND the country has turned from heaven to hell by imports and introduction of western cultures it is today a jungle, the inhabitants of which are freightened by lion-skinned administrators with powers invested in them by lion-skinned laws, framed by lion-skinned Parliaments manned by lion-skinned elected representatives of the inhabitants of the jungled country, jungled under western cultures, a country in which, today everyone is trying to devour his fellow beings by all jackal-means at his disposal.

No one knows that the jackal is in lion's garb. The country is at peril, it cannot be happy, unless it knows that it is the jackal which is acting in lion's garb and then snatches away the garb from the jackal's body and kills the jackal outright.

Does the country know this phenomenon ? The inner eyes of the best of the country's brains are shrouded, the outer eyes look at the western cultures only and make the shrouded inner-eyes know them alone, believe in them as truths and direct action in them alone. The cultures of BHARAT are no more found on the face of the country. The country would never get peace and happiness of Ram Rajya envisaged by Mahatma Gandhi

Tilivillage–Saugor
31-3-73

What is English Language

The country is at peril today. Its integrity is at a dead comma. And why ? It is so only on account of one fact : The predominance and predominating rule of English language.

English language is not the language of the country, yet the country is ruled on its strength and why ? Because the Hindi knowing peoples are the real inhabitants of this country so also other language-peoples live in the vast precincts of this continental country.

And English language alone is ruling the country, because the English language knowing peoples, may they be in parliaments or in administrative field, may they be administrators of law or its advocates, may they be in any other fields, like the many different vokes of life, the businesses and professions; all are having their own interpretations of the English words and these interpretations are not only acted upon by them, but they are being put to action against the Hindi knowing peoples and peoples knowing other sister languages.

The English knowing class of the country is immersed in English culture and is bent upon exploiting the vast masses of the country, not knowing English language and is making a fool of those masses for the appeasement of their own passions and the process is developing rocket-way.

By belated wrong interpretations and believing in those interpretations of English language and cultures therein, the country has gone mad for them and this madness is fructifying in all shorts of restlessnesses and miseries inside the country and from outside the country which does not know the way to peace and happiness.

Do the English knowing countries know the correct interpretations of their own words or the interpretations are conflicting from dictionary to dictionary and from court to court in their own country, changing those interpretations from time to time and have not been able to put correct interpretations and are making big volumes of dictionaries on account of their lackness in reaching the perfection in interpretations of their own words?

Then why have you gone, in this country, a slave of that language? If you wish to save the country from this hanging peril, you try to expel the English language, the English culture, the way of English thought, which has not been able to maintain peace and hapiness in English countries themselves.

Tilivillage–Saugor
31–3–1973.

देश में राजा वर्ग बनाम प्रजावर्ग

आज देश में शासन प्रजावर्ग को जिस भीषणता से नष्ट करने में लगा है, उतनी भीषणता से शासन ने प्रजावर्ग का नाश कभी नहीं किया।

शासन में प्रवेश करने वाले नागरिक को पुलिस और आधुनिक शस्त्रों सहित फौजों का बल प्राप्त हो जाता है। सोई शासन मनमाने कानून प्रजावर्ग पर प्रतिक्षण लादता चला जा रहा है और शासकों द्वारा उन कानूनों के मनमाने अर्थ लगा प्रजावर्ग उनके द्वारा पीसा जा रहा है।

शासन वर्ग अंग्रेजी भाषा भाषी है और वह उस भाषा के शब्दों के अर्थ मनमाने गढ़ता ही चला जाता है, यही परिपाटी में शासक ढला, मनमाने अंग्रेजी भाषा के अर्थ लगा, प्रजावर्ग पर आदेश दे, उस प्रजावर्ग पर जुल्म पर जुल्म, पुलिस और फौजों के बलपर बरसाता ही जाता है।

इसीलिए अंग्रेजी भाषा की दौड़ देश में आज तीव्र गति से बढ़ती ही जाती है इस गति का कहीं अंत नहीं। शासक वर्ग में विषय कषाय जनित अन्याय की बेल में, बेल के जाल में, आज प्रजावर्ग मकड़ो के जाल में मक्खी समान फँस चुका है। वह मकड़ी रूपी शासन अपनी प्रकृति में अपना परिणाम छोड़ता ही नहीं यथा : "भली भाँति शास्त्रों को पढ़कर भी अभव्य जीव प्रकृति (अर्थात् प्रकृति के स्वभाव को) नहीं छोड़ता जैसे मीठे दूध को पीते हुआ भी सर्प निर्विष नहीं होते।"

अतः सिद्ध है अंग्रेजी भाषा देश की प्रजा को विषरूप है और अंग्रेजी भाषा भाषी देश में सर्प रूप हो प्रजावर्ग पर विष वमन करता ही चला जा रहा है। विषय-कषाय रूप विष शासन-शासक वर्ग में बढ़ता ही जाता है, वह प्रतिक्षण अपने विषय-कषाय की सीमाओं का उल्लंघन करता ही जाता है।

हे प्रजा वर्ग के नागरिको, तुम इस विष से बचो। क्या यह विष तुम्हें भीषणता से डँसता ही नहीं जा रहा है? क्या तुम्हारे सभी उपचार इस विष के आतंक से तुम्हें बचाने में सफल हो पाये हैं?

क्या तुम इस विष का फल भोग, अपने स्वच्छ जीवन को भीषणता

से अस्वच्छ कर आकुलताओं के जाल में अपने जीवन का अंत भयंकर शारीरिक व्याधियों सहित नहीं करते ? फिर देश का तो क्या संसार का भी शासक बनना, क्या तुम्हारी मूर्खता सिद्ध नहीं हुई ?

तिलीग्राम–सागर
७–४–१९७३

अत्याचार और अत्याचारी

Today, neither the administration nor the administrators know, what is law and who is law breaker ?

Unmindful of the law, the administration is coining the so-called laws and the administrators are putting them to action and are trying to catch the so-called law-breakers and punishing them as virulently as it lies in their powers. This practice of the administration and the administrators is rocketway ahead, beating its records daily and what are the results ?

There looks to be none in the country who may not be termed a law-breaker. All the citizens of the country are termed by the administration and the administrators as law-breakers and those in the administration alone say, they are followers of law, the exponents and actors of law and all of them alone are pure citizens.

There is unrest all over and can you tell me who is responsible ? Is it the citizen or the administration ? The results of actions and act—the restlessnesses—all over, prove that unlawful laws and unlawful administrative actions under them alone are instrumental in bearing the fruits of lawlessness all over.

Ye, the fellow beings in administration ! know

the correct interpretation of the word LAW. A rule of true LAW is all happiness and peace.

Do not apply the interpretation of the RAVAN to the word LAW, you have done so and are constently repeating it in the way of RAVANS and KAURWAS. The true interpretation was given by RAMCHANDRA and PANDWAS and so acted upon by them. Can you still listen to this my prayer ? Has not western language and culture attacked this country like Ravans and Kaurwas ?

The word Law defined is the truth, the rule under which is all happiness and peace.

अतः आज के शासन के सिद्धान्त ही अत्याचार हैं और उनका शासक ही अत्याचारी है और ऐसे शासनरूपी कोल्हू में देश के नागरिक, शासकों द्वारा पेरे जा रहे हैं, अन्य कुछ नहीं है।

हे शासक, चेत ! क्या तू यह नहीं जानता कि "जो आत्मा जैसा करता है वह आत्मा वैसा ही भोगता है।" क्या तू आज निराकुल सुख शांति को प्राप्त है ? अथवा आकुलताओं में मक्खी बन मकड़ी के जाल में फँसा, अपने जीवन का अंत कर रहा है ?

आकुलता रहित सुख और शांति का मार्ग ही—यथार्थ सिद्धान्त है—अन्य तेरे गठित सभी सिद्धान्त—कुतत्त्व, मिथ्यात्व हैं, मूर्खता हैं—इनसे पराङ्मुख हो। क्या महावीर भगवान् के यही वचन नहीं थे। विचार तो कर।

तिलीग्राम–सागर
९–४–१९७३

[signature]

भगवान् महावीर ने कहा है :—

राग, द्वेष, मोह भावों में आत्मा का परिणमन करना, सो ही अत्याचार है और इन्हीं भावों में परिणमन करने वाला आत्मा ही अत्याचारी है, और ऐसा अत्याचार करनेवाला आत्मा ही स्वयं के किये, उन अत्याचारों का फल भोगता है, इस सिद्धान्त को अन्यथा नहीं किया जा सकता। ऐसा आत्मा ही संसार के दुःखों को जीवन पर्यन्त भोगता है। ऐसा आत्मा ही पुद्गल कार्मण शरीर बनाने में कारण बन, नवीन पर्याय धारण कर पुनः-पुनः संसार के दुःख भोगता रहता है।

जब आत्मा राग, द्वेष मोह में अपने परिणमन को त्यागे, और अपने शुद्ध भावों में—ज्ञान दर्शन गुण में—परिणमन करे, तभी वह निराकुल सुख पाता है और तभी कार्मण शरीर क्षीण होता जाता है। क्षीण होते-होते जब इस कार्मण शरीर का नाश हो जाता है, तब आत्मा पुनः संसारी पर्यायें धारण नहीं करता। वह आत्मा अपनी अमूर्तीक (सिद्ध) पर्याय धारण कर शाश्वत सुख का भोक्ता बन जाता है।

सिलीग्राम-सागर
१०-४-७३

संसारी जीव का परिणमन

एक द्रव्य का परिणमन दूसरे द्रव्य में त्रिकाल संभव नहीं।

—जैन-सिद्धान्त

अतएव देश में शासन-शासकों का यह कहना, जानना, और मानना कि वे देश के नागरिकों को सुखी-दुःखी कर सकते हैं व उन देशवासियों को सुखी करने में लगे हुए हैं—यह उनकी मान्यता एवं तद्वत विश्वास को प्राप्त होकर उनका तद्वत् आचरण, उनकी मात्र मूर्खता-अज्ञानता का द्योतक एवं आचरण है; अन्य कुछ भी नहीं है।

संसारी जीव-पुरुष सदैव विभावों में परिणमन करता है। रागद्वेषमय आत्मा के परिणमन करने को विभाव कहते हैं। इन विभावों में आत्मा का परिणमन संसारी सुख-दुःख हैं। विभावों की तीव्रता में परिणमन से आत्मा दारुण दुःख पाता है और उनकी मंदता आत्मा के संसारी सुखों में कारण बनती है।

शासनवर्ग एवं शासक वर्ग, स्वयं तीव्रता से विभावों में परिणमन करता, स्वयं के विषय-कषायों के तुष्टीकरण में भीषणता से संलग्न है। इन्हीं विषय-कषायों के तुष्टीकरण हेतु उसकी फौजें एवं पुलिस, विश्व-विद्यालय, कचहरियाँ एवं अस्पताल हैं। इन्हीं के तुष्टीकरण हेतु उनके उद्यम-व्यवसाय के सरकारी-करण हैं उनके विषय-कषायों के तुष्टीकरण की तीव्रता, देशवासियों पर से भीषणता से कर-वसूली करवा रही है।

विषय कषायों का परिणमन, संसारी आत्मा के तीव्र विभावों का परिणमन है। आत्मा का तीव्रतम विभावों में परिणमन ही आज आत्मा का शुद्ध आचरण एवं धर्म अथवा जीवन का लक्ष्य कहा जाता है, माना जाता है और इसी में संसार, आज विश्वास को प्राप्त है। यह भी संसार जानता है कि जीवन पर्यन्त विषय-कषायों का तुष्टीकरण होता नहीं है, तथापि स्वय के तुष्टीकरण हेतु देशवासियों का भिन्न-भिन्न उपायों द्वारा भीषणता से शोषण को प्राप्त है।

जब स्वयं के विषय-कषायों के तुष्टीकरण को शासन-शासक-वर्ग सदैव प्राप्त रहे, तो क्या कभी भी ऐसा शासन एवं शासक देशवासियों के सुख का कारण बन सकता है ? कदापि नहीं ।

अनभिज्ञ देशवासियों की इस प्रकार जो आज भीषणता से चिन्ता-जनक हालत है, वह पूर्व कभी नहीं हुई ।

हे देशनायको ! अब भी चेतो ।

निर्लीग्राम–सागर
२-५-७३

देश में शासन की गरीब जनता पर इतनी तीव्र दुष्टता आज क्यों ?

सदैव से गेहूँ और चावल के भाव अन्य सभी प्रकार के अनाजों के भाव से ज्यादा रहते चले आए हैं पर आज शासन फौजों व पुलिस की शक्ति को पाकर उन्हें अत्यन्त विनाशकारी अस्त्रों से लैस कर, अत्यन्त दुष्टता का व्यवहार गरीब नागरिकों को दे रहा है और उनसे सभी न्यूनतम-श्रेणी के अनाजों से भी कम भावों पर गरीब नागरिकों से गेहूँ चावल छुड़ाने को कटिबध्य है। यह दुष्टता का व्यवहार अपनी सीमाएँ नित्य प्रति लांघ रहा है। आज शासन अपने इसी व्यवहार को उसी गरीब जनता की भलाई का व्यवहार ही केवल नहीं कहता है तथापि अस्त्र शस्त्रास्त्रों से लैस फौजों के बलपर, धनी जनता और अपने कर्मचारियों को भी, इस दुष्टता के व्यवहार को गरीब जनता की भलाई का व्यवहार कहलवाने को बाध्य करता है। सभी आज, इस प्रकार शासन की दुष्टता के व्यवहार से पीड़ित हैं।

शासन यह जानता और मानता भी है कि गेहूँ और चावल देश की गरीब जनता के भोजन हैं और वे उसे पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना अनिवार्य हैं।

शासन यह भी जानता है कि बड़े-बड़े शहरों में रहने वाली जनता को अनेकानेक प्रकार के भोजन कारखानों में बने और होटलों में बने विविध प्रकार के सामिष निरामिष सदैव शहरी नागरिकों के सेवा में प्रस्तुत रहते हैं क्योंकि शासक वर्ग और शहरी जनता देश के भिन्न-भिन्न भागों की देहाती जनता को तीव्रता से चूसती जा रही है, फिर भी शासन अपनी दुष्टता की रट को बढ़ाता ही जाता है कि वह गरीब जनता से न्यूनतम भावों पर गेहूँ चावल छुड़ाकर ही रहेगा। यह ऐसा क्यों ? शासन उत्तर दें। शासन के पास कोई उत्तर नहीं है वह फिर उत्तर भी कैसे दे ? शासन तो अकल का ठेकेदार बना हुआ है। उस अकल की ठेकेदारी में शासन तो यह कहना, तोते की भाँति छोड़ता नहीं कि शासन

को इस प्रकार की दुष्टता का व्यवहार ही, शासन की सत्यता का व्यवहार है कि जिसके आचरण से शासन देश में सुख एवं शान्ति स्थापित करेगा। भला यह शासन बताए कि उसकी सत्यता का आचरण भी देश में दुःख और अशान्ति फैला सकता है?

संसार ने तो सदैव जाना और माना है कि असत्यता का आचरण सदैव दुःख और अशांति में परिणमित होता है और सत्यता का आचरण सदैव सुख और शांति में कारण बनता है।

सोई शासन की यह अकल की ठेकेदारी कैसी? शासन की दुष्टता से कम भावों पर गेहूँ चावल की वसूली मात्र शासन का असत् दुष्टता का व्यवहार, देश की गरीब जनता के प्रति, शासन का घातक प्रहार है। ऐसे देश में क्या सुख शान्ति ढूँढा जा सकती है? कदापि नहीं।

गेहूँ-चावल गरीब जनता अपनी शारीरिक मेहनत से अपनी भूमि पर पैदा करता है और उसका एक कण भी उस गरीब जनता की इच्छाओं के विपरीत शासन को, अपनी फौजी एवं पुलिस की ताकतों की धमकी देकर छुड़ाने का अधिकार नहीं है, फिर भी शासन अपने हठ पर कटिबध्य है, वह अपना हठ छोड़ता ही नहीं है। इस प्रकार के हठ द्वारा, शासन क्या देश में अशांति नहीं बढ़ाएगा? शासन फौजी-पुलिस के बलपर हिंसात्मक प्रवृत्तियों को छोड़ना ही नहीं चाहता। अपने ही देशवासियों के प्रति इस प्रकार की क्रूरतात्मक हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ मात्र शासन की असत्यता का परिणाम है। शासन इस असत्यता के आचरण को ही सत्याचरण कहता है। असत्य को जानने वाला ही असत्य को सत्य कहता है। जब तक सत्य क्या है यह नहीं जाना जाता, तब तक कोई भी सत्य असत्य का न तो भेद ही कर पाता है और न ही अपने असत्य के आचरण का त्याग कर पाता है, अस्तु।

गरीब जनता की संपत्ति, उसका जन्म सिद्ध अधिकार, उसके जीवन का एकमात्र आधार ही भूमि से उत्पादित गेहूँ-चावल हैं। इसके विपरीत धनधान्यादिक की विपुलतम मात्रा को प्राप्त शासन अगर गेहूँ-चावल गरीब जनता से बलपूर्वक छिनाता है तो वह शासन देश को मात्र नारकीय जीवन देगा, अन्य कुछ नहीं।

उपरोक्त शब्दों के विपरीत, जैन शासन इस प्रकार कहता है—

सुह परिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति भणिय मण्णेसु।
परिणामो णण्ण गदो दुःक्खक्खय कारण समये॥

अर्थात्

अपनी आत्म सत्ता से भिन्न पंचपरमेष्ठियों में जो भक्ति आदि प्रशस्त-रागरूप परिणाम है वह पुण्य है, और जो पर द्रव्य में ममत्व विषयानुराग अप्रशस्तराग परिणाम है वह पाप है, जो अन्य द्रव्य में नहीं प्रवर्ते, ऐसा वीतराग शुद्धोपयोग रूप भाव है, वह दुःख के नाश का कारण मोक्ष स्वरूप है, ऐसा परमागम में कहा है।

अतएव हे देश के शासको, शुद्ध तत्त्वों एवं तथ्यों के जाने बिना, देश के सुख और शांति में आप कभी कारण-निमित्त नहीं बन पाओगे।

यदि आप दूसरों से आदर चाहते हो तो उनका आदर करना चाहिए। यदि आप दूसरों का अनादर करेंगे तो आपको उनसे भी अनादर मिलेगा, और परस्पर प्रवृत्तियाँ दूषित होती जायेंगी, जिनका फल हिंसात्मक प्रवृत्ति सदैव से हुआ है और हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ सदैव दुःख देती एवं नाश को बुलाती हैं।

अतएव हे मानव ! अनादर की प्रवृत्ति त्याग सबके साथ आदर भाव को प्राप्त हो; फिर सुख और शान्ति में बाधा नहीं।

तिलीग्राम-सागर
१-६-७३

आचरणहीनता

देश में जितने भी अनेक प्रान्त हैं, उन सबमें, समय-समय पर उन प्रान्तों की विधानमभाएँ, स्वयं अपने चुने हुए मुख्य मंत्री में जब विश्वास खो देती हैं, तत्फल स्वरूप जो विघटनात्मक क्रियाएँ एवं उनके फल जो नागरिकों को भोगना पड़ते हैं, वे क्रियाएँ एवं उनके फल, मात्र इस परिणाम को स्पष्ट करते हैं कि या तो स्वयं उस व्यक्ति ने "आचरण हीनता" की सीमा लांघ दी है अथवा उन विधान सभाओं के सदस्यों का आचरण का पतन हो गया है अथवा उस प्रान्त के नागरिक-निवासी इतने आचरण-हीन हो गए हैं कि वे अपने प्रान्त की विधान सभाओं को ऐसे सदस्य चुनने में समर्थ नहीं जो अपने तथा कथित मार्ग दर्शक मुख्य मंत्री चुनने की योग्यता को प्राप्त हों। यह सब विश्लेषण स्वयं सिद्ध है, आज सर्वत्र मात्र आचरण हीनता का बोलबाला है न तो आज का देशवासी आचरण शब्द का अर्थ ही जानता है और न उसके जानने की चेष्टा ही है और इतने विशाल शिक्षालय जिन्हें विश्वविद्यालय नाम से पुकारते हैं—वे विविध भाँति के होने पर भी, न तो आचरण शब्द का अर्थ ही जानते हैं, और न अपने-अपने स्नातकों को तद्रूप शिक्षा देने में समर्थ हैं, वे मात्र अविद्या की शिक्षा दे रहे हैं और उसी के फलस्वरूप आज के नागरिक का आचरण सर्वत्र देखा व पाया जाता है।

इस प्रकार देश की जनजाति में आचरणहीनता प्रबलता से देश में बढ़ रही है और आज के शिक्षालय उसे बढ़ाते ही जाते हैं। जब तक शिक्षालय यह नहीं जाने कि आचरण शब्द का क्या अर्थ है और जब तक इस शब्द का सत्यार्थ ज्ञान, उसकी शिक्षा न दें, तब तक त्रिकाल यह सम्भव नहीं होगा कि देश में ऐसी गंभीर घटनाएं घटे कि जो देश के प्रान्तों की विधान सभाओं को भी अपने अवधि काल में स्थिर रख सकें। ऐसी परिस्थितियों में केन्द्र का उस प्रदेश में शासन, इलाज मात्र कहा जा सकता है किन्तु उससे कभी भी उस प्रान्त की आचरणहीनता नष्ट नहीं हो पाती। इसी प्रकार पुनः नए मुख्य-मंत्री को प्रान्त की विधान सभा चुन ले, किन्तु यह परिस्थिति तत्काल डावांडोल हो ध्वस्त हो जाती है क्योंकि आचरणहीनता सर्वत्र सदैव अपना फल देकर ही रहती है।

अगर देश के विविध प्रान्तों का विश्लेषण किया जाय तो यह आचरण

हीनता देश के समृद्धिशाली उत्तर प्रान्तों में ज्यादा विद्यमान है और ऐसे बहुत थोड़े दक्षिण के प्रांत बचे हैं जहाँ इसने अपने विध्वंसात्मक फल को प्रत्पित न किया हो किन्तु यह सर्व मान्य है कि आचरणहीनता का रोग संक्रामकता से देश में बढ़ रहा है और सब ओर अपना भीषण फल दिखाने में मात्र तत्पर ही नहीं है अपितु दृष्टिगोचर है।

आचरणहीनता क्या है और आचरण क्या है इसको जाने बिना आचरण की हीनता हटना संभव नहीं। आज के विविध रूप शिक्षालय जिन पर अमित धन व्यय हो रहा है, किस प्रकार आचरणहीनता की शिक्षा दे रहे हैं और अशिक्षितों पर भी आचरणहीनता का प्रभाव एव उनका आचरण क्यों हीनता को प्राप्त है, यह सबका उत्तर जानने की जब मनुष्य की आज चेष्टा ही नहीं और वह आचरणहीनता किस प्रकार नष्ट हो इसका तो उत्तर भी जानने को आज तत्पर नहीं, अस्तु।

विचारों की शुद्धि और अशुद्धि, इस प्रकार आत्मा का परिणमन अथवा आचरण दो प्रकार का होता है। विचारधाराएँ ही मन-वचन-काय की क्रियाओं को निर्धारित करती हैं व तदनुकूल मन-वचन और काय की क्रियाएँ होती हैं। सोई जब तक विचारों की शुद्धि की शिक्षा आज का युवक न पाए और उसकी विचार धारा शुद्ध हो, जब तक उसकी मन-वचन-काय की क्रियाएँ तद्वत न हों, तब तक देश की विघटनात्मक क्रियाओं का रुकना संभव नहीं।

शुद्ध विचारों के आचरण से विषय कषायों से प्रवृत्ति हटती है और जैसे-जैसे विचार शुद्ध होते जाते हैं, वैसे-वैसे उस जीवात्मा की शक्ति बढ़ती जाती है उसके ज्ञान गुण का परिणमन आचरण बढ़ता जाता है, और अज्ञानता अविद्या से आचरण परिणमन हटता जाता है। अज्ञानता अविद्या से हटने पर आत्मा का शुद्ध शक्तिशाली आचरण उसी प्रकार बढ़ता जाता है ऐसी आत्माएँ ही समन्वय संगठन को प्राप्त होती हैं और वह संगठन अविचलित होता है ऐसी आत्माओं का आचरण स्वयं को सुखी बना, अन्य के सुखों में कारण बनता है। किन्तु आज देश की परिस्थिति पूर्णतः विपरीत है और जब तक केंद्रीय विधान सभा स्वयं इस दृष्टिकोण का विश्लेषण कर अपने विपरीत दृष्टिकोण का त्याग नहीं करती, तब तक देश की परिस्थिति सुधरे, यह त्रिकाल संभव नहीं, वह तो बिगड़ने को दिशा की ओर भागती ही जाएगी।

तिलीग्राम—सागर
२-७-७३

जबरदस्ती—एक भयंकर संक्रामक बीमारी

आज जगत और विशेषतः भारतदेश जबरदस्ती की बीमारी से भयंकरता से संक्रामक रूप में सर्वत्र पीड़ित है। आज जहाँ देखो वहाँ मनुष्य, अन्य मनुष्य के प्रति, अपने अभीष्ट की पूर्ति हेतु जबरदस्ती करता, देखा व पाया जाता है। गुंडा गर्दी, डकैती, मारपीट अथवा सभी प्रकार के युद्ध चाहे वे मनुष्य, मनुष्य के बीच हों अथवा देश-देश के विरुद्ध हों सभी जबरदस्ती की भीषण इच्छा के परिणाम हैं। यह जबरदस्ती दिन प्रतिदिन शासक एवं शासित में भी भयंकरता में बढ़ती हुई दृष्टिगोचर है। देश में सरकारीकरण, लाटरी, मद्यपेय अध्यादेश और ऐसे अन्य सभी कार्य तो थोते जबरदस्ती के उदाहरण हैं ही किन्तु भीषणता में जबरदस्ती में लगाए जा रहे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर मात्र जबरदस्ती के सीमा के द्योतक ही नहीं हैं किन्तु वे सब कर जबरदस्ती की सीमा को लांघकर नारकीय बन चुके हैं। यह नारकीयता, देश का शासन, तोपों-बंदूकों फौजों एवं पुलिस के बलपर करता ही जाता है उसका न तो अन्त ही दृष्टिगोचर है और न ही इसे रोकने का शासन के पास कोई उपाय है। इन सब सत्यों का एक यही नतीजा निकलता है कि आज का मनुष्य विवेक को खो चुका है और ऐसा स्पष्ट है कि आज मनुष्य का लक्ष्य, विवेक ग्रहण करने का जैसे रहा ही नहीं हो।

कुछ दिन पूर्व इस जगत के भिन्न-भिन्न भागों में रहने वाले दो राजनीतिज्ञों ने एक देश की दूसरे देश के प्रति जबरदस्ती की सीमा बांधने की चेष्टा तो की और वे परमाणु अस्त्रों का एक दूसरे के बीच निषेधात्मक निर्णय को भी प्राप्त हुए, किन्तु परमाणु अस्त्रों के नए अविष्कारों को रोक उनके प्रयोगों पर भी निषेधता को प्राप्त नहीं हो सके। आज जो निर्णय उनने किया उसका फल दूसरे दिन ही समाप्त हो गया और दूसरे दिन ही सुनने में आया कि चीन देश ने हाइड्रोजन बम बना उसकी प्रयोगात्मक क्रिया की है। इन सब उदाहरणों से पूर्णतः स्पष्ट है कि आज का मनुष्य अपने जीवन को विवेक के आधार पर चलाने को असमर्थ हो चुका है और उस जीवन के संचालन हेतु दिनरात, हर क्षेत्र में और विषय में,

जीवन को मात्र जबरदस्ती क्रिया के आधार पर चलाने में आज तत्पर ही नहीं है किन्तु देखा, सुना व पाया जाता है यह दशा चाहे शासन की कहो चाहे शासन करने वाले शासकों की कहो, चाहे देशवासियों की कहो, अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार हर क्षेत्र में पाई जाती है और दिन प्रतिदिन जबरदस्ती करने की क्रिया हर क्षेत्र में बढ़ती ही जाती है। आज देश में शिक्षालय तो भीषणता से बढ़ गए हैं किन्तु वहाँ भी हर घड़ी छात्रों एवं उनके गुरुओं में भी एवं शिक्षालयों के शासकों में भी जबर-दस्ती करने की क्रिया का बोलबाला है।

ऐसी परिस्थिति में देशवासी जो अन्य के साथ जबरदस्ती नहीं कर सकते हैं वे भीषणता से इस बीमारी के शिकार हो रहे हैं। और उनका जीवन नारकीय बनता चला जाता है। दिन प्रतिदिन उनपर भिन्न-भिन्न रूप में नारकीयता लादी जा रही है। उनको इतना विवेक ही कहाँ कि वे अपने जीवन को इस जबरदस्ती की नारकीयता से बचा सकें और सुख एवं शान्ति से अपना टूटा-फूटा जीवन व्यतीत कर सकें। देश नायक यह तो कहते हैं कि वे उनके जीवन को सुख एवं शान्तिमय बनाने में लगे हुए हैं किन्तु हालत यह है कि दिन प्रतिदिन जनसाधारण के जीवन की हालत बदतरता में गिर रही है। अगर उनके पास खाने पीने का इन्तजाम हो पाया तो पहिनने को न्यूनतम वर्णों के कपड़े नहीं हैं और अगर यह भी हो गया तो जीवन में मौसम के प्रकोपों से बचने को झोपड़ी तो बना नहीं पाते। इन परिस्थितियों को पूर्ण जानते हुए भी उप-रान्त शासन धोखा देकर उनको सुख और शान्ति देने के वचन दे, भीष-णता से उनके साथ जबरदस्ती रूप टैक्स पर टैक्स लादता ही जाता है और अपनी शक्त्यानुसार उन्हें लूटने हेतु व्यापारी एवं सरकार के प्रति उन्हें लोभकर बना स्पष्ट लूटने में तत्पर है। भाई यह सब क्या है? किसी प्रकार कोई इसे असत्य करने को समर्थ नहीं है। शासन में रत शासक वर्ग अपनी-अपनी जबरदस्ती करने की शक्ति के अनुसार, जबर-दस्ती के आचरण में मस्तरत, जब स्वयं सुख और शान्ति को प्राप्त नहीं है तो क्या ऐसा शासन भी देश के अमित जनसाधारण को कभी उनके जीवन को सुख और शान्तिमय बनाने में कारण बन सकेगा? कदापि नहीं। और कारण क्या है? आज देश एवं समाज में जबरदस्ती रूप क्रिया को ही विवेक रूप क्रिया कहते हैं आज संसार में और विशेषतः भारत देश में इस 'जबरदस्ती' शब्द का या तो अर्थ नहीं जानते अथवा जानते हुए भी उसके आचरण में लीन हैं।

"जबरदस्ती" आत्मा के तीव्र कषायों में परिणमन को जैन सिद्धान्त ने कहा है जबतक आत्मा का तीव्र कषायों में परिणमन न हो तब तक एक व्यक्ति के साथ दूसरा जबरदस्ती कर ही नहीं सकता और जब तक मनुष्य की प्रवृत्ति पांच इन्द्रियों के विषयों को तीव्रता को प्राप्त न हो तब तक ऐसा पुरुष तीव्र कषायों का अवलंबन ही नहीं ले सकता। सोई आज देश ने पाश्चात्य संस्कृति का पदचुम्बन कर, आज का शासन शासक देश को उसी में डुबाने को तत्पर है और स्वयं उसमें भीषणता से डूबा हुआ है। आज शासन सत्य को तो जानता ही नहीं, विवेक उसके पास फटकता ही नहीं, वह तो अपने विषय-कषाय के पुष्टीकरण हेतु मात्र जबरदस्ती की क्रियाओं में संलग्न है और अपने जबरदस्ती के आचरण को बढ़ाता ही जाता है। देश में जबरदस्ती के आचरण का ही बोलबाला है। अस्तु!

जबरदस्ती की क्रिया ही अत्याचार है और इसी क्रिया का आज देश में भिन्न-भिन्न रूपों में बोलबाला है। ऐसे देश को अगर जबरदस्ती की क्रियाओं अथवा अत्याचारों का घर कहें तो तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।

जब शासन ही विवेक रहित हो जाय और हर समस्या का हल विवेक में न पा सके तो आज का अज्ञानी जन साधारण विवेक में परिणमन कर सके, यह एक असाध्य चर्चा है आज की शिक्षा-दीक्षा सभी के परिणाम और उसको प्राप्त मनुष्य के चित्त का परिणमन, मात्र जबरदस्ती की क्रियाओं से पीड़ित है। आज मनुष्य विवेक खो चुका है विवेक के परिणमन को प्राप्त ही नहीं। आज अगर शासन विवेक क्या है यह जान अपने आचरण को विवेकमय कर सके तभी स्वयं एवं अन्य के सुखों में कारण बन सकता है, अन्यथा नहीं।

तिलोग्राम–सागर
४-७-७३

[signature]

सम्यक शब्द का अर्थ शुद्ध है व, सम्यक्त्व शब्द का अर्थ शुद्ध द्रव्य में श्रद्धा करना है, सो जीव का शुद्ध दर्शन, ज्ञान गुण में श्रद्धा को सम्यक्त्व कहते हैं।

मिथ्या शब्द का अर्थ झूठ अथवा अशुद्ध है व मिथ्यात्व का अर्थ अशुद्ध अथवा विपरीत दर्शन-ज्ञान में श्रद्धा करना होता है।

चारित्र

चारित्र शब्द का अर्थ—आत्मा का अपने स्वभाव में परिणमना है। सो आत्मा के शुद्ध दर्शन ज्ञान गुण अर्थात् स्वभाव में परिणमन करने को चारित्र कहते हैं। इस शब्द का अर्थ अंग्रेजी भाषा में Character लगाया है किन्तु अंग्रेजी भाषा-भाषी चारित्र के इस अर्थ को जानता ही नहीं तथापि इस अर्थ को लगाने में अंग्रेजी भाषा असमर्थ है। जगत में, जो कि आज सर्वत्र अंग्रेजी अथवा अन्य पाश्चात्य भाषाओं का अनुगामी है, इसी कारण, चारित्र शब्द के यथार्थ शब्द का पूर्णतः अभाव है। ऐसी परिस्थिति में, पाश्चात्य संस्कृति जब स्वयं चारित्र शब्द के मूल अर्थ को नहीं जानती, तब आज जगत में आत्मा का अपने स्वभाव में परिणमन करने का अर्थात् चारित्र में परिणमन करने का पूर्णतः अभाव निश्चित है। स्व चारित्र में आत्मा का परिणमन ही विवेक अथवा दर्शन-ज्ञान गुण में आत्मा का परिणमन है, ऐसा आत्मा का परिणमन मात्र सम्यग्दृष्टि के ही संभव है। चतुर्थ गुणस्थान में ही जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। इससे पूर्व प्रथम तीन गुणस्थानों में आत्मा सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं कर पाता, अर्थात् सम्यग्दृष्टि नहीं बनता। इस प्रकार चतुर्थ गुण-स्थानवर्ती मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का भेद जानता है, अथवा ज्ञान और अज्ञान का भेद जानता है। ऐसा आत्मा ही भेद विज्ञानी कहलाता है। भेद विज्ञान अर्थात् ज्ञान अज्ञान का भेद जानने के उपरान्त ही आत्मा का चारित्र में परिणमना संभव होता है। अतएव चतुर्थ गुणस्थानवर्ती आत्मा अविरत अथवा असंयमी आत्मा कहलाता है, ऐसा आत्मा भेद विज्ञानी होने पर भी अचारित्रवान ही रहता है। भेदविज्ञान होने पर अर्थात् ज्ञान और अज्ञान का भेद जानने पर आत्मा का परिणमन मिथ्यात्व से हट सम्यक्त्व में दृढ़ता को प्राप्त होने लगता है।

जैसे-जैसे सम्यक्त्व की दृढ़ता बढ़ती जाती है और मिथ्यात्व क्षीण होता जाता है। वैसे-वैसे आत्मा चारित्र में दृढ़ता को प्राप्त होता जाता है।

पाँचवे गुणस्थान में आत्मा का चारित्र थोड़ा सुधरता है, छठवें गुणस्थान में चारित्र पूर्ण हो जाता है, सातवें गुणस्थान में मिथ्यात्व अथवा अज्ञान हटता जाता हो आत्मा के चारित्र की शुद्धि व वृद्धि होती जाती है। इस गुणस्थान में चार घातिया कर्मों का क्षय और उपशम होने लगता है। इन घातिया कर्मों का उपशम ग्यारहवें गुणस्थान में हो जाता है अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थान में वे चार घातिया कर्म वे असर हो जाते है इसलिए इसे चारित्र मोहनीय का उपशम कहते है।

बारहवें गुणस्थान में वे ही चार घातिया कर्म नाश को प्राप्त होते है अर्थात् बारहवें गुणस्थान में चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय होता है।

ये ही चार घातिया कर्म जो कि पुद्गल के परमाणुओं का स्कंध होते है, और आत्मा के प्रदेशों में प्रवेश कर आत्मा के शुद्ध दर्शन ज्ञान गुण को आच्छादित कर आत्मा को अपने शुद्ध दर्शन-ज्ञान गुण में परिणमन नहीं होने देते, इनका पूर्णतः नाश बारहवें गुणस्थान में होने पर आत्मा शुद्ध दर्शन-ज्ञान गुण में सदैव काल परिणमन करने लगता है और ऐसा आत्मा केवलज्ञानी हो तेरहवें गुणस्थान में तीर्थंकर पद पाता है।

इस प्रकार जैन आगम ने चारित्र शब्द का विश्लेषण दिया है, इस विश्लेषण को जाने बिना और उसमें श्रद्धा को प्राप्त हुए बिना, आत्मा का चारित्र में परिणमन करना संभव नहीं हो सकता।

आज जगत में आत्माएँ इस विश्लेषण को न जान सम्यक्त्व की प्राप्ति ही नहीं कर पाती, फिर उनका चारित्र में प्रवेश ही कैसे हो? नहीं हो सकता। आज जैन जगत भी स्वयं अपने द्रव्य श्रुत-आगम की जानकारी के अभाव में इस विश्लेषण को नहीं जानता है। और जब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति न हो चारित्र तो बनता ही नहीं है, अन्य मतावलम्बियों की अन्य ही जाने। आज के जगत में मिथ्यात्व का प्रसार तो इतना भीषण है कि अगर व्यक्ति व्यक्ति को स्वयं के मत वाला कहे तो असत्य नहीं होगा। अतः आज सभी और अचारित्रवान है। आज जगत में जहाँ-जहाँ जितने विवाद देखे जाते है तद्रूप जितनी समस्याएँ है उन सभी में आत्मा का मिथ्यात्व को सम्यक्त्व जान आत्मा का मिथ्यात्व में परिणमन करना कारण है।

कषाय के चार भेद है, क्रोध, मान, माया और लोभ। इन चार कषायों में आत्मा के परिणमन को ही मिथ्यात्व कहते है। इन चार कषायों

में परिणमन करता हुआ आत्मा के परिणमन को राग-द्वेष, मोह भावों में परिणमन करना कहलाता है। इन कषायों अथवा राग-द्वेष मोह भावों में आत्मा का विकारी भावों में परिणमन करना कहलाता है। जब आत्मा इन विकारी भावों में परिणमन करता है तब इस परिणमन का निमित्त पा चार घातिया कर्म रूपी पुद्गल के परमाणु आत्म-प्रदेशों में प्रवेश कर पुद्गल स्कंध बनाते रहते हैं जिसे कार्मण शरीर कहते हैं। इस कार्मण शरीर का क्षयोपशम संसारी जीव के सदैव काल होता रहता है और चार घातिया कर्म का फल स्वरूप चार अघातिया कर्म जीव को चार गतियों में भ्रमण करा उसे छह काय देते ही रहते हैं, इन चार गतियों, छः कायों को पा, जीव विकारी भावों में परिणमन करता हुआ जन्म जरा और मृत्यु के दुःख सदैव काल भोगता ही रहता है।

मनुष्य आयु में जीव को यह विवेक शक्ति उत्पन्न हो सकती है कि जिससे वह सम्यक्त्व की प्राप्ति कर सकता है और उसके उपरान्त चारित्र-वान हो घातिया अघातिया कर्मों का नाशकर केवलज्ञान की प्राप्ति कर सकता है, किन्तु मिथ्यात्व में श्रद्धा को प्राप्त, आज मनुष्य विषय-कषायों में आचरण करता, उन्हीं में सुख जानता मानता आचरता में अचारित्र-वान है।

निजग्राम-सागर
[illegible]

सरकारीकरण अथवा केन्द्रीकरण

उपरोक्त शब्दों का अंग्रेजी भाषा का शब्द (Nationalisation) है। शुद्ध हिन्दी भाषा में इसे एक शक्ति के आधीन देश के धन-धन्यादिक को एकत्रित करना कहते हैं। जो शक्ति इस रूप क्रिया में पागलवत लग जाए, ऐसी वह शक्ति, स्वभावतः उस एकत्रित किये गए धन धन्यादिक का भोगोपभोग प्रथमतः स्वयं करती है और अन्य को उसका भोगोपभोग स्वयं की इच्छाओं के तुष्टीकरण करने के उपरान्त ही करने देता है।

आज भारत देश गणतन्त्रवादी देश है। गणतन्त्रवादिता में प्रत्येक देशवासी को राजा कहते हैं किन्तु यह तो संभव नहीं, तथापि उनके द्वारा निर्वाचित पुरुष राजा बनते हैं, और उन निर्वाचित पुरुषों के द्वारा शासन हेतु जितने भी भिन्न-भिन्न रूप में सरकारीकरण के कार्यालय स्थापित होते हैं उनमें क्रियाशील सभी कर्मचारी राजा बन जाते हैं क्योंकि गणतन्त्रवाद शब्द की मान्यता ही ऐसी है. इस प्रकार देश में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो आज सरकारीकरणरूप को प्राप्त व्यवसाय हैं, उनके द्वारा उपार्जित धन धन्यादिक को स्वयं के भोगोपभोग के तुष्टीकरण हेतु वे सभी कर्मचारी कटिबद्ध हैं। शासन के द्वारा सरकारीकरण में रत जन-समुदाय का उस व्यवसाय पर एकाधिकरण होता है और इसलिए जब उस व्यवसाय में रत जनसमुदाय अपने भोगोपभोग के तुष्टीकरण में बाधा पाता है, तब वह संगठित हो हड़ताल कर देता है, अर्थात् अपनी व्यवसाय हेतु क्रियाओं को बंद कर देता है। इससे जनमानस के जीवन में बाधाएँ आने लगती हैं और उस शासन की जो कि गणतन्त्रवादी अपने को कहता है, उसकी प्रशासनिक क्षमता अस्त व्यस्त हो जाती है और वह विवेक-हीन बन, इस प्रकार की हड़तालों को पुलिस-फौजों द्वारा, नाश करने में लग जाती है।

यह क्रिया आज के गणतन्त्रवादी भारत देश में भीषणता से सर्वत्र देखी पाई जाती है। गणतंत्रवादी-शासन इस विशाल देश के अज्ञानी देश-वासियों को निरन्तर यह लोभ देता है कि उसके सरकारीकरण की सभी

क्रियाएं देशवासियों को सुख और शांति की वृद्धि करेंगी, और वे देश के अज्ञानी देश वासी शासन के द्वारा दिये गए प्रलोभनों को यथार्थ जान, शासन द्वारा लगाये गये भीषणता धारण किए हुए करों का बोझ ढोते जाते है और शासन को उसके सरकारीकरण हेतु धन जुटाते हो जाते है।

इस प्रकार यह सरकारीकरण की क्रिया देश में उग्ररूप धारण किए है। सरकारीकरण हुए व्यवसायों में, न तो उसमें रत कर्मचारियों के भोगोपभोगों का तुष्टीकरण हो पाता है और न ही उनकी संख्या घटती है।

कारण भी स्पष्ट है, आज देश में भोगोपभोग के नवीनतम साधनों से देश के नगर भरे पड़े है, उनके भंडार नगरों में बढ़ रहे है और फिर शासन का बल्कि शासन में रत शासक एवं शासन का कर्मचारी अगर उन नगरों में भीषणता से उपलब्ध, आज भोगोपभोग के साधनों की प्राप्ति हेतु अपने शासन के बल का प्रयोग करता इसमें सन्देह ही क्या ?

आज शासन अपना उद्देश्य तो देश के अज्ञानी देशवासियों को सुख शान्ति एवं समृद्धि देना बताता है, किन्तु दिन प्रतिदिन आज देश के गरीब देशवासी सुख-शान्ति एवं जीवन के सरल-सुलभ साधनों की प्राप्ति से दूर ही होते देखे पाए जाते है।

इस प्रकार शासन अपने उद्देश्यों के लक्ष्य से दिन प्रतिदिन दूर भागता जाता है और देश में सभी ओर अशान्ति का बोलबाला देखा जा रहा है।

शासन में रत मनुष्य समाज के विद्वानों की बड़ी-बड़ी समितियां हल ढूंढने में लगी है, किन्तु उनके निर्णय और उन निर्णयों की क्रियात्मकता, अशान्ति बढ़ाने में कारण तो बनती है और अशान्ति बढ़ाती है, किन्तु शान्ति की दिशा देने में, उन समितियों के निर्णय फलित नहीं हो पाते।

यह सब क्या है ? इस बढ़ती हुई अशान्ति का क्या कारण है ? देश में बढ़ती हुई अशान्ति कैसे रुके ? और शान्ति की दिशा में देश की जन मानुष जाति का जीवन कैसे आए, यह एक असमंजस प्रश्न आज देश के चोटी के नेता-विचारकों के चित्त पर भीषणता से चक्कर लगा रहा है।

जैन सिद्धान्त अथवा जैन कानून में (सिद्धान्त शब्द का अर्थ कानून है) आत्मा का गुण चेतना कहते है, उसके तीन भेद है १. ज्ञान चेतना, २. कर्म चेतना, ३. कर्म फल चेतना। ज्ञान-चेतना केवलज्ञान ये दोनों एकार्थवाची शब्द है और यह गुण तीर्थंकर व सिद्ध जीवों के होता है। ऐसे जीव शाश्वत सुख के भोक्ता होते है।

कर्म चेतना और कर्म फल चेतना ये संसारी जीवों के गुण हैं। संसारी जीव जिस प्रकार के राग द्वेष भावों को करता है, उसी रूप और उस मात्रा में वह अशान्ति का भोक्ता है और वह अशांति ही दुःख है, जैसे आज राग द्वेष की तीव्रता से जीव के आचरण से, आज का मनुष्य तीव्रता से भोग रहा है।

शासन में रत देशवासी तीव्रता से इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति हेतु साधनों को एकत्रित करने में अन्य सभी जन मानुष के प्रति उतनी ही तीव्रता से घृणा को प्राप्त हो क्रियाशील हो जाता है, और सरकारीकरण के व्यवसायों को बन्द कर, शासन को उसके भोगोपभोग के साधनों की उपलब्धि हेतु धन जुटाने को मजबूर कर देता है और शासन देश के गरीब जनता पर नए-नए कर लाद, उनसे शासन में रत कर्मचारियों को धन जुटाना है। यह क्रिया आज देश में भीषणता से क्रियाशील है। न तो इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति की होड़ मंद गति को प्राप्त है और न ही वह भविष्य में दृष्टि गोचर ही है। इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति को ही आज का मानव सुख कहता और यह राग आज निरन्तर चरम सीमा लांघ रहा है। जैन सिद्धान्त इस प्रकार के राग में आत्मा के परिणमन को ही कर्म चेतना कहते हैं। ऐसी चेतना ही आत्मा में अशान्ति देती है जिसे कर्म फल चेतना कहते हैं।

आत्मा में जब अशान्ति होती है तब ऐसी आत्मा दुःखों को अनुभव करता है और पांच इन्द्रियों के सुखों से दुःख को मिटाने में लगती है किन्तु इन्द्रिय जनित सुख तो क्षणिक होते हैं और ऐसे सुखों का परिणाम सदैव दुःख ही दुःख होता है क्योंकि मनुष्य, इनकी प्राप्ति हेतु आज सर्वत्र हिंसात्मक युद्ध हर स्तर पर कर रहा है और भीषणतम नाश करता हुआ भी पांच इन्द्रिय के सुखों का तृप्तीकरण करने में असमर्थ है, तथापि चेतता नहीं, और जब इन पांच इन्द्रियों के सुखों की तीव्रता को प्राप्त हो जाता है, तब उस शरीर को भी क्षीण एवं व्याधि-ग्रस्त बना देता है, कि जिस शरीर में आयु पर्यन्त उस आत्मा का वास होता है, और शरीर में उत्पन्न हुई व्याधियों को जीवन पर्यंत ऐसा आत्मा भोगता हुआ दुःखों को प्राप्त होता है।

जैन सिद्धान्त ने कर्म चेतना को अज्ञानता कहा है और अज्ञानता से आत्मा के परिणमन के कारण जो दुःख होते हैं उसे कर्मफल चेतना कहा है।

सो आज देश में इस प्रकार शासन-शासक वर्ग में एवं प्रजा वर्ग में अज्ञानता को ही ज्ञान समझकर आज देश के दोनों वर्ग इस प्रकार अज्ञानता की शिक्षा-दीक्षा को प्राप्त जीवन पर्यंत इसी अज्ञानता के परिणमन के कारण भोगोपभोगों को ही मात्र सुख-शांति का कारण जानकर उसी में दृढ़ विश्वास को प्राप्त उसी में आचरण करता हुआ ही देश में अज्ञानता को बढ़ाने में संलग्नता में रत है। ऐसी परिस्थितियों में देश में अशांति ही अशांति बढ़ती सदैव हो गया।

अज्ञानता तो अज्ञानता ही है आज देशवासियों में अज्ञानता के परिणमन में परस्पर होड़ तेजी से चल रही है वह एक दूसरे के प्रति अपने भोगोपभोग की स्थिरता को प्राप्त तथा घृणा को प्राप्त है। इस प्रकार बढ़ती हुई तीव्रता से अज्ञानता को प्राप्त आत्माओं का केन्द्रीकरण अथवा सरकारीकरण असम्भव है। वे तथाकथित शासन शासक वर्ग की आत्माएँ तो प्रजावर्ग के जीवन के सभी आवश्यकताओं को जुटाने के उपरान्त भी उनके सरकारीकरण द्वारा अपनी स्वयं की आत्माओं की विषय-कषायों की पूर्तिकरण, जीवन पर्यंत नहीं कर पाती तब ऐसी परिस्थिति में प्रजा वर्ग के जीवन के न्यूनतम साधनों की पर्याप्त मात्रा में उनके जीवन की गरीबी हालत में जुटना सम्भव प्रतीत नहीं। होने तो ऐसे भी केस सरकारीकरण में रत आत्माएँ तो शासन को प्रजावर्ग पर करों द्वारा अपने भोगोपभोग के साधनों को जुटाने हेतु मजबूर कर देती है और शासन में रत आत्माएँ प्रजावर्ग को करों द्वारा शोषण करने में ही लगी है तब ऐसी हालत में गरीब प्रजावर्ग जीवन में अपने वस्त्र एवं आहार भी पर्याप्त मात्रा में जुटा सकता यह असम्भव है। यही आज के सरकारीकरण की व्याख्या जान। अस्तु

आज देश का उच्चतम विचारक यह नहीं जानता कि विचारों का सरकारीकरण अथवा केन्द्रीकरण ही सुख-शांति में कारण बन सकता है और विचारों का केन्द्रीकरण अथवा सरकारीकरण अज्ञानी आत्माओं में त्रिकाल में सम्भव नहीं।

जैन सिद्धान्त रागद्वेष मोह भाव सहित आत्मा के परिणमन को अथवा क्रोध मान माया और लोभ रूपी कषायों में परिणमन को, अज्ञानता का परिणमन कहता है। इस प्रकार का परिणमन तो प्रत्येक संसारी आत्मा में त्रिकाल होता ही रहता है किन्तु—

इन कषायों अथवा विकारी भावों में जब तीव्रता से आत्मा का परिणमन होता है तब ऐसी आत्माएँ सरकारीकरण अथवा केन्द्रीकरण

को प्राप्त हो सकें और देश के जनजीवन को एक विचार धारा में चलाने में समर्थ हो सकें यह त्रिकाल संभव नहीं।

ऐसी परिस्थिति में एक मात्र उपाय उन विकारी भावों की तीव्रता का नाश करने में ही है और यह तभी संभव है कि जब भोग विलासों के साधन जो नगरों में आज भर दिए गए हैं उनका नाश हो, क्योंकि आजका देशवासी उनकी प्राप्ति के राग की तीव्रता से प्राप्त है। वह अज्ञानी है और इस प्रकार का राग बढ़ता ही जाता है। जब तक साधन अपनी चटक-मटक द्वारा अज्ञानी देश वासी को उनके ग्रहण करने के प्रलोभनों को बढ़ा रहे हैं तब तक उनकी प्राप्ति की अज्ञानता नष्ट होना दृष्टि गोचर नहीं।

जैन सिद्धान्त ऐसे अज्ञानी आत्मा को मिथ्यादृष्टि कहता है और ऐसी आत्माओं के परिणमन को मिथ्यात्व अथवा मोह कहता है। इसी को जैन सिद्धान्त आत्मा का असत्य का आचरण कहता है। आत्मा के ज्ञान के आचरण को ही जैन सिद्धान्त सत्याचरण कहता है सो ऐसा आचरण आज पृथ्वीतल पर कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं है आत्मा के अज्ञान और ज्ञान के आचरण के भेद को जब आत्मा जानने लगता है और ज्ञान में आत्मा के आचरण को ही सत्याचरण जान ऐसा आचरण में विश्वास को प्राप्त होता है तब उस आत्मा को सम्यग्दृष्टि जैन सिद्धान्त कहता है।

ऐसा आत्मा ही जीवन में विपरीत भोगोपभोग के आचरण का त्यागी होता है और ऐसा आत्मा ही स्वयं सुख व शांति को ग्रहण करता है और अन्य को सुख शांति देने का मार्ग देने में कारण बनता है सो आज शासन मिथ्यात्व की भीषणता को प्राप्त है वह तो विशाल मात्रा में लगे सरकारी-करण में रत कर्मचारियों के भोगोपभोग के साधनों का तुष्टि-करण करने में असमर्थ है, फिर प्रजावर्ग में उसी भोगोपभोग का तुष्टि-करण करने में किस प्रकार समर्थ होगा यह दृष्टिगोचर नहीं।

अज्ञानी प्रजा वर्ग तो अज्ञानी है ही किन्तु मार्ग दर्शक शासन-शासक वर्ग जब भीषणता में सरकारीकरणों एवं करों द्वारा गरीब अज्ञानी प्रजा वर्ग को चूसता हो जाय तो दुःख अशान्ति बढ़ती ही जायगी।

हे देश के मानवो ज्ञान-अज्ञान का भेद जानो और ज्ञान में श्रद्धा को प्राप्त हो उसी में आचरण करो यही मात्र सुख शांति का उपाय है अन्य नहीं।

तिलीग्राम—सागर

१०-८-७३

दिनांक........